जैन भारती

वर्ष 53 • अंक 4 • अप्रैल, 2005

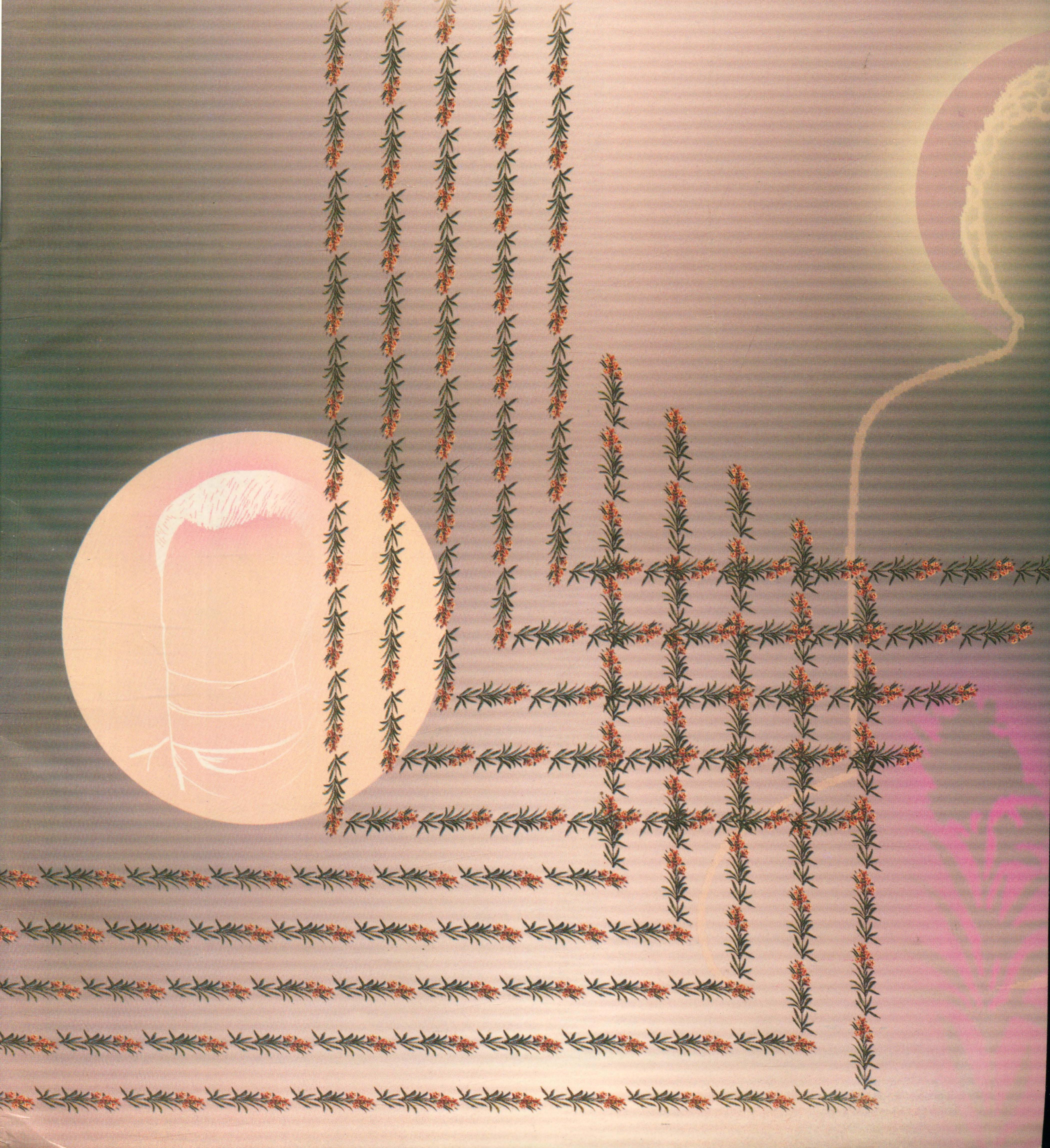

With best compliments from :

KOTHARI METALS LTD.

website : www.kotharimetal.com

SPECIALISTS IN NON FERROUS METALS

Head Office :

'Lords', 7/1 Lord Sinha Road, 5th Floor
Kolkata 700071

Phone : (033) 22828532/8534/7949 | Fax : (033) 22828462
e-mail : vikashji@cal2.vsnl.net.in

Branches at :

Delhi • Mumbai • Gurgaon • Bhiwadi (Rajasthan)
• Ludhiana (Punjab)

शुभू पटवा
मानद संपादक
•
बच्छराज दूगड़
मानद सह-संपादक

जैन भारती

वर्ष 53 • अप्रैल, 2005 • अंक 4

विमर्श

9
डॉ. एस. राधाकृष्णन
आध्यात्मिक साक्षात्कार : आंतरिक प्रकाश

14
डॉ. विजयरानी
महावीर और विश्व-समस्याएं

रपट

18
भवानी सोलंकी
141वां मर्यादा महोत्सव

•

आवरण
अडिग

अनुभूति

25
आचार्यश्री महाप्रज्ञ
समता-विकास के त्रिआयाम

31
जिनेंद्र कोठारी
प्रासंगिक हैं आज भी आचार्य भिक्षु

34
विष्णु प्रभाकर
भोगो, पर त्याग से

35
कहानी
वीरेंद्रकुमार जैन
तुम्हारी चंदन मौसी

40
कविता
कुंवरनारायण की कविताएं

प्रसंग

5
शुभू पटवा
शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्

आचार्य श्री कैलाससागर सूरि ज्ञान
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
कोबा, जि. गांधीनगर, पीन-३८२

शीलन

43
रामधारीसिंह दिनकर
रामकथा : संस्कृतियों का विराट समन्वय

47
साध्वी निर्वाणश्री
महावीर की त्रिविध जीवन-शैली

49
बालकथा
इंदिरा अनंतकृष्णन
दादीमां

संपादकीय पता : संपादक, जैन भारती, भीनासर 334403, बीकानेर • फोन : 2270305, 2202505
प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401
प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001
सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/- रुपये • त्रैवार्षिक 500/- रुपये • दसवर्षीय 1500/- रुपये

ऐसे हैं ये दृढ़धर्मी

आसकरण दांती ने विजयचंदजी पटवा से कहा—'विजयचंदजी! तुम्हारे गुरु भीखणजी किंवाड़ खोल मेड़ी में ठहरे।'

यह सुनकर विजयचंदजी बोले—'मेरे गुरु इस प्रकार नहीं ठहरते।'

तब आसकरणजी ने कहा—'भाई विजयचंद! मेरा विश्वास तो कर।'

तब विजयचंदजी बोले—'तुम्हारा पूरा विश्वास है, तुम सदा झूठ बोलते हो।' ऐसा कहकर उसे पराभूत कर दिया। साधुओं के पास जाकर उन्हें पूछा तक नहीं।

यह बात स्वामीजी के कानों तक पहुंची, तब स्वामीजी बोले—'ऐसा लगता है, मानो विजयचंदजी पटवा क्षायक सम्यक्त्व के धनी हैं। कुछ लोग साधुओं में अनेक दोष बतलाते हैं, इन्हें सुनाते हैं, पर वे उन दोषों के बारे में साधुओं को पूछते तक नहीं। ऐसे हैं वे दृढ़धर्मी।'

मुझे पता नहीं चला

एक दिन सांझ के समय विजयचंदजी स्वामीजी के पास सामायिक और प्रतिक्रमण करने आए। आकाश में बादल छाए हुए थे, इसलिए कितना दिन शेष है, इसका पता नहीं चल रहा था। तब उन्होंने स्वामीजी से प्रार्थना की—'महाराज! आप पानी पी, उसे चुकता कर दें।'

तब स्वामीजी ने पानी पी उसे चुकता कर दिया। बाद में धूप निकली। दिन काफी शेष था। तब स्वामीजी बोले—'साधुओं को रात्रि में पानी नहीं पीना है। गृहस्थ के रात्रि में पानी पीने का त्याग नहीं होता। इसलिए वे रात को पानी पी लेते हैं।'

यह सुनकर विजयचंदजी स्वामीजी के चरणों में गिर पड़े और बोले—'हे महापुरुष! आप अवसर के जानकार हैं, पर मुझे उसका पता नहीं चला।'

ऐसे थे वे साधुओं के विनीत। उन्होंने स्वामीजी के सामने बहुत विनम्रता की। •

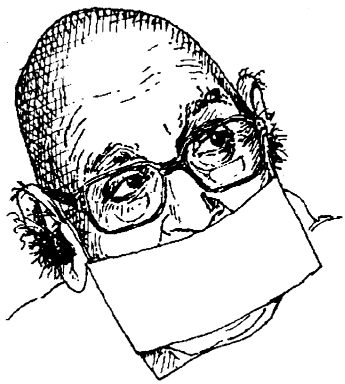

अध्यात्म और विज्ञान दोनों का लक्ष्य है—सत्य की खोज। एक की खोज का आधार बिंदु है—आत्मा और दूसरे की खोज का विषय है—पदार्थ। दोनों का प्रस्थान अज्ञात को ज्ञात करने की दिशा में है। अध्यात्म का विकास शास्त्रों के सहारे हो सकता है, पर कोई भी पहुंचा हुआ आध्यात्मिक वहीं रुकता नहीं है। 'अप्पणा सच्चमेसेज्जा'—स्वयं सत्य खोजें—भगवान महावीर का निर्देश ही सत्य को खोजने की प्रेरणा देता है। अध्यात्म के क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का निर्माण ही आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण है। प्रशिक्षण की प्रक्रिया समीचीन, व्यवस्थित और दीर्घकालीन हो तो उसके यथेष्ट परिणाम आ सकते हैं।

—आचार्य तुलसी

परमात्मा वह आत्मा होती है जो परम अवस्था को प्राप्त हो गई है—यह निराकार है, शरीरातीत है। महात्मा वे हैं, जो महानता की दिशा में प्रस्थित हैं। सदात्मा वह है, जो अपने ज्ञान और शक्ति का उपयोग सत्कार्यों में करता है। दुरात्मा वह है, जो अपने श्रम, समय एवं शक्ति का दुरुपयोग करता है। दुनिया में महात्मा बनने वाले विरल होते हैं, किंतु सदात्मा प्रत्येक व्यक्ति बन सकता है। यदि सब महात्मा बन जाएं, कोई दुरात्मा न रहे तो स्वस्थ समाज का सपना सच में बदल जाए।

❖ ❖ ❖

जो दूसरों के कल्याण के लिए कष्ट झेलने को तैयार रहते हैं, वे महापुरुष आत्मकल्याण के साथ-साथ परकल्याण भी करते हैं। जिनकी संकल्पशक्ति सुदृढ़ होती है, उनके लिए कुछ भी दुष्कर नहीं होता। आज अपेक्षा है कि ऐसे महापुरुषों के जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर हर व्यक्ति अपनी कष्टसहिष्णुता को बढ़ाए तथा अपने स्वीकृत पथ पर अडिग रहने का प्रयास करे।

—युवाचार्य महाश्रमण

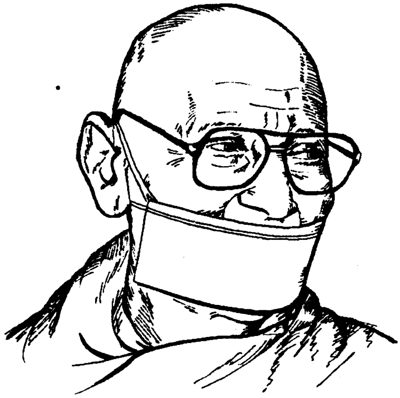

अनेकांत सिद्धांत के प्रतिपादन की पद्धति में केवलज्ञानी और श्रुतज्ञानी का विभाग नहीं किया जा सकता। स्याद्वाद का सिद्धांत अल्पज्ञता और सर्वज्ञता से संबद्ध नहीं है। अल्पज्ञ का ज्ञान ऐकांतिक होता है—ऐसा स्वीकार करने का कोई कारण नहीं है। अखंड-सत्य को जानने वाले का ज्ञान अनैकांतिक और खंड-सत्य को जानने वाले का ज्ञान ऐकांतिक होता है, यह अनेकांत का अभिमत नहीं है। अनेकांत-ज्ञान का आधार द्रव्य की त्रयात्मकता है, अल्पज्ञता और सर्वज्ञता नहीं। जो सर्वज्ञ के ज्ञान का विषय है, वह संपूर्ण विषय एक अल्पज्ञ श्रुतज्ञानी का भी हो सकता है। सर्वज्ञ अखंड-सत्य का साक्षात्कार कर लेता है और अल्पज्ञ सर्वज्ञ की वाणी के आधार पर, शास्त्र के आधार पर उसका ज्ञान करता है; इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि अल्पज्ञ का ज्ञान ऐकांतिक ही है।

द्रव्य की नित्यता और अनित्यता सर्वज्ञ या अल्पज्ञ के ज्ञान द्वारा आरोपित नहीं है। नित्य और अनित्य द्रव्य होता है, ज्ञान नहीं होता। क्योंकि द्रव्य अपने अंतरंग स्वभाव में नित्य, अनित्य है; ज्ञाता के ज्ञान के आधार पर नहीं है। द्रव्य का वह स्वभाव जैसे सर्वज्ञ के लिए नित्यानित्यात्मक होगा, वैसे अल्पज्ञ के लिए भी नित्यानित्यात्मक होगा।

—आचार्यश्री महाप्रज्ञ

प्रसंग

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्

आयुर्वेद के इस महत्त्वपूर्ण सूत्र—'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'—शरीर के द्वारा ही धर्म की सभी संभावनाएं फलवती होना संभव है और स्वास्थ्य की रक्षा तथा दीर्घायु होना इसीलिए आवश्यक माना गया है। इसीलिए भारत में 'आयुर्वेद' और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शब्दावली में हम 'आयुर्विज्ञान' को स्वास्थ्य की रक्षा का मूलाधार मानते हैं। बहुत मुमकिन है कि थोड़ा-सा विवाद 'धर्म' शब्द पर उठा दिया जाए और यह कह दिया जाए कि धर्म तो महज एक ढकोसला है, अतः धर्म की संभावनाओं का फलवती होना-भर ही शरीर अथवा स्वास्थ्य का निहितार्थ नहीं। पर, इस बात पर किसी की भी असहमति नहीं हो सकती कि स्वस्थ शरीर के द्वारा ही कर्तव्य-निर्वहन की सभी संभावनाएं फलवती हो सकती हैं। इस तरह यह सर्वमान्य है कि शरीर का स्वस्थ होना परमावश्यक है और इस पर किसी की भिन्न राय नहीं हो सकती।

विश्व स्तर पर सात अप्रैल का दिन 'विश्व स्वास्थ्य दिवस' के रूप में घोषित है। यह भी संयोग ही मानिए कि भारतीय काल-गणना के अनुसार चैत्र महीना अक्सर अप्रैल माह में ही आता है। प्रकृति और ऋतुचर्या की दृष्टि से चैत्र माह में रक्त-शुद्धि का संचरण होता है। यह एक स्वाभाविक क्रिया है और आयुर्वेद में इसीलिए चैत्र माह का विशिष्ट स्थान है। इस प्रकार सहज ही यह संयोग कहा जा सकता है कि विश्व स्तर पर सात अप्रैल जहां संपूर्ण जगत को स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहने का संकेत देता है, वहीं चैत्र का महीना भी यही संदेश देता है। पर, हर साल मिलने वाले इस संदेश का मनुष्य समाज पर क्या कोई असर हम देख सकते हैं? हमें भारी निराशा होगी। निरंतर बढ़ रही बीमारियों और कई बीमारियों का 'लाइलाज' हो जाना, तो कइयों के लिए यह धारणा कि 'मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की' का पक्की होते चले जाना, विश्वव्यापी निराशा का आधार है। हृदय-रोग, रक्तचाप, मधुमेह, एच आई वी एड्स, कैंसर, क्षय रोग आदि बीमारियां भारत में भी और विश्व स्तर पर भी लगातार बढ़ रही हैं। 'एड्स' जैसी लाइलाज बीमारी में भारत का पूरे विश्व में दूसरा स्थान है। कैंसर जैसे रोग से हर साल तीन लाख भारतजन अपनी जान गंवा बैठते हैं। क्षय रोग से भारत में पांच लाख जन हर साल अपनी जिंदगी से हाथ धोते हैं। मधुमेह के रोगी सबसे अधिक तीन करोड़ दस लाख भारत में हैं और हर साल पचास लाख लोग हृदय-आघात से मर जाते हैं। यह अनुमान लगाया जा रहा है कि भारत में हृदय रोग लगातार बढ़ रहा है। सन् 2030, यानी अगले पच्चीस वर्षों में हृदय-रोग से मरने वालों की संख्या एक करोड़, सत्तर लाख को पार कर सकती है। ये हालात इस अवस्था में हैं, जब यह माना जाता है कि पूरी दुनिया में स्वास्थ्य-संसाधन बढ़े हैं। बीमारियों पर नियंत्रण के लिए किए गए शोध कार्यों में बड़ी सफलताएं हासिल की गई हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन स्वास्थ्य-रक्षा और इसके स्तर को बनाए रखने के लिए मुस्तैद है।

ऐसी मुस्तैदी के बाद भी रोगों का बढ़ते चले जाना क्या इस बात का सूचक नहीं कि 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' जैसे सूत्र के प्रति हमारे समाज में कोई आस्था शेष नहीं बची। जो व्याधियां निरंतर बढ़ रही हैं और जिनका उल्लेख यहां किया गया है, उनके उपचार की विधियों में निश्चय ही विकास हुआ है, पर इन

व्याधियों की जड़ों को समाप्त करने के प्रति विश्व स्वास्थ्य संगठन की ओर से कोई सुनिश्चित कदम उठा हो—प्रतीत नहीं होता। विश्व स्वास्थ्य दिवस पर इस दृष्टि से कोई विचार भी नहीं होता।

इस दृष्टि से विचार आवश्यक है। यदि हम बीमारियों के लगातार बढ़ते जाने पर नियंत्रण करना चाहते हैं तो स्वास्थ्य नीति में क्रांतिकारी परिवर्तन करना जरूरी है। ऐसे किसी भी परिवर्तन में उन बुनियादी बिंदुओं का समावेश आवश्यक है जो बीमारी के प्रवेश को बाधित कर सकें। 'महावीर का स्वास्थ्यशास्त्र' इस दृष्टि से उपयोगी हो सकता है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने आरोग्य को जीवन से जुड़ा हुआ प्रश्न मानते हुए यह स्पष्ट किया है कि भगवान महावीर ने चाहे स्वास्थ्यशास्त्र का प्रतिपादन न किया हो, पर स्वास्थ्य में बाधा डालने वाले तत्त्व सर्वाधिक प्रखरता से उनकी वाणी से स्पष्ट हुए हैं। महावीर ने आत्मिक स्वास्थ्य की बात कही है और राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ, भय, शोक, घृणा और काम-वासना को इसका बाधक तत्त्व माना है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी मानते हैं कि शरीर और मन को ये तत्त्व ही रुग्ण बनाते हैं। इसीलिए वे यह मान्यता रखते हैं कि इनकी चिकित्सा ही स्वास्थ्य का मूल आधार है। इसी आधार को आचार्यश्री महाप्रज्ञजी विस्तार और ठोस तार्किक आधारों से समझाते हैं और इसी को वे 'महावीर का स्वास्थ्यशास्त्र' कहते हैं। स्वास्थ्य के संदर्भ में वे शरीर, इंद्रिय, श्वास, प्राण, मन, भाव और भाषा को सम्मुख रख 'सात अंगों का समुच्चय' प्रस्तुत करते हैं और इन सबकी विस्तार से व्याख्या करते हुए यह मत स्थापित करते हैं कि स्वास्थ्य के संदर्भ में यदि यह चिंतनधारा विकसित हो जाए तो व्यक्ति का अस्तित्व और उसका स्वास्थ्य दोनों के सूत्र उपलब्ध हो जाएंगे। विश्व स्वास्थ्य दिवस (7 अप्रैल) हर साल आता है, पर चिंतन की अपेक्षा शायद इस दृष्टि से कभी सामने नहीं आई। बढ़ रही रुग्णता पर यदि सचमुच नियंत्रण चाहते हैं तो इस दिशा में चिंतन और कर्म के स्तर पर आगे बढ़ना चाहिए।

लगता है कि आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की बताई इस दिशा के सिवा कोई अन्य विकल्प नजर भी नहीं आ रहा। महात्मा गांधी का भी यही मत रहा है। अपनी पुस्तक 'हिंद स्वराज' में चिकित्सा पर उन्होंने विस्तार से कहा है। वे कहते हैं—'मैंने विलास किया, मैं बीमार पड़ा, डाक्टर ने मुझे दवा दी और मैं चंगा हुआ। क्या मैं फिर से विलास नहीं करूंगा? जरूर करूंगा। अगर डाक्टर बीच में न आता तो कुदरत अपना काम करती, मेरा मन मजबूत बनता और अंत में निर्विषयी होकर मैं सुखी होता।' गांधीजी तो यहां तक कह देते हैं—'अस्पतालें पाप की जड़ हैं। उनकी बदौलत लोग शरीर का जतन कम करते हैं और अनीति को बढ़ाते हैं।' इवान इलिच जैसे विश्वविख्यात चिंतक वर्तमान चिकित्सा पद्धति को स्वास्थ्य का स्वत्वहरण मानते हैं। उनकी पुस्तक 'लिमिट्स टू मेडिसिन' (मेडिकल नेमसिस : द एक्सप्रोप्रिएशन ऑफ हैल्थ) में वे आज के चिकित्सक और चिकित्सा-प्रणाली के बारे में कहते हैं कि ये मिलकर ऐसे तंत्र का निर्माण कर रहे हैं जो बीमारी की वृद्धि करता है, समाज में रुग्णता का भाव उत्पन्न करता है, दवाओं पर निर्भरता से उद्धार का भ्रांतिपूर्ण विश्वास पैदा करता है और एक प्रकार से समाज के स्वास्थ्य का स्वत्वहरण ही कर लेता है। कवि-चिंतक स. ही. वात्स्यायन ने जर्मनी के हाइडेलबर्ग विश्वविद्यालय के चिकित्सा संकाय की ओर से हुए एक परिसंवाद—'चिकित्सा के पुनर्मानवीकरण की आवश्यकता' विषय पर बोलते हुए अमेरिका का अपना एक निजी अनुभव बताया जो बड़ा ही मार्मिक है। छाती में दर्द होने पर डाक्टर की सहायता और जांच के लिए उन्होंने एक अस्पताल संगठन से समय मांगा। वे मार्च में समय मांगते हैं और उनको जून में जांच के लिए समय दिया जाता है। वात्स्यायनजी (अज्ञेय) कहते हैं—दर्द मुझे आज है और हृदय रोग की हिस्ट्री है। पर, यंत्रवत जवाब आता है, '17 जून का अपॉइंटमेंट आपको चाहिए या नहीं?' वे समय इसलिए ले लेते हैं कि नामी-गरामी अस्पताल का अनुभव हो जाएगा। निश्चित दिन उनके शरीर की लगभग तीस तरह की जांच होती है और वात्स्यायनजी बताते हैं कि कहीं किसी आदमी या आदम-जात से उनका वास्ता नहीं पड़ा। वे बताते हैं कि डाक्टर से बिना मुलाकात हुए उन्हें कहा गया कि आप घर जा सकते हैं। वे कहते हैं—आज चिकित्सा कुशल है, कार्यक्षम है, दक्ष है, पर उसमें करुणा नहीं है। दर्द की दवा है, पर दर्द नहीं है। सफाई है (वह भी अगर है!), पर सेवा नहीं है। वात्स्यायनजी कहते हैं—'क्या हमारा पूरा समाज फिर से कम-से-कम कुछ पेशों और सेवाओं में उस कारुण्य अथवा मानव-सेवा-भाव की प्रतिष्ठा करने को तैयार है, जिनके बिना मनुष्य मनुष्य नहीं है?'

'महावीर का स्वास्थ्यशास्त्र' से हमें ऐसे प्रश्नों के उत्तर मिल सकते हैं। विश्व स्वास्थ्य दिवस जैसे अवसरों पर अब हमें इस दिशा में सोचना ही चाहिए।

—शुभू पटवा

विमर्श

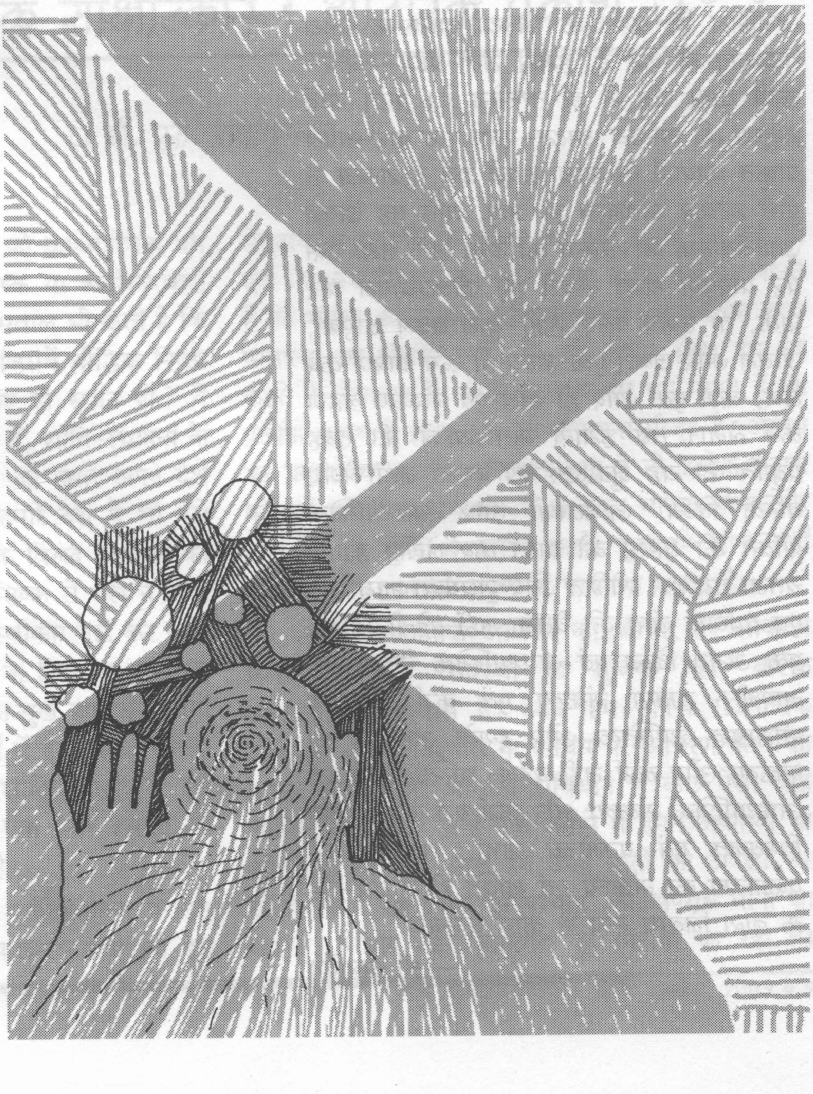

हमारी वास्तविक सत्ता एवं आत्मा हमारी बुद्धि से छुपी हुई है, क्योंकि हमारी बुद्धि अंतर्जगत् से अनभिज्ञ है, वह एक मिथ्या ज्ञान के साथ तदाकार हो गई है, हमारे मन-प्राण-शरीर-रूपी बाह्य यंत्र में ही तल्लीन है। परंतु यदि मनुष्य की सक्रिय आत्म-सत्ता एक बार अपने प्राकृत कारणों के साथ अपने इस तादात्म्य से पीछे हटकर अंतर्मुख हो जाए, यदि वह अपने आभ्यंतरिक सत्स्वरूप को देख सके तथा उस पर परिपूर्ण श्रद्धा रखते हुए जीवनयापन कर सके, तो उसके लिए सभी-कुछ बदल जाएगा, जीवन और जगत् एक अन्य ही रूप धारण कर लेंगे, कर्म एक और ही अर्थ एवं स्वरूप ग्रहण कर लेगा। तब हमारी सत्ता पहले की तरह प्रकृति की यह क्षुद्र अहंमय रचना नहीं लेगी, बल्कि दिव्य, अविनाशी और आध्यात्मिक शक्ति की बृहत्ता को प्राप्त कर लेगी। हमारी चेतना तब इस सीमित और संघर्षरत मानसिक एवं प्राणिक जीव की चेतना नहीं रहेगी, बल्कि एक अनंत दिव्य एवं आध्यात्मिक चेतना बन जाएगी। हमारा संकल्प एवं कर्म भी इस सीमाबद्ध व्यक्तित्व और इसके अहंकार का संकल्प और कर्म नहीं रहेंगे, बल्कि दिव्य एवं आध्यात्मिक संकल्प और कर्म बन जाएंगे। तब विश्वगत एवं परमोच्च सत्ता, सर्वात्मा एवं परमात्मा का संकल्प एवं शक्ति ही मानव-देह के द्वारा निर्बाध रूप से कार्य करेगी।

—श्री अरविंद

हमारा अंतर्तम प्रकाश हमें अपने-आप में परिवर्तन लाने की संभावना की ओर संकेत करता है। इतिहास साक्षी है कि हममें अनेक बार परिवर्तन हुए हैं। आखिर वह क्या चीज है जो हमारी प्रगति का कारण बनी, जिसकी वजह से हमने तमाम उपलब्धियां हासिल कीं और जिसके कारण हम इस विश्व में एकता स्थापित करने में कामयाब हो सकते हैं और यही एकता हममें से प्रत्येक को खाना, कपड़ा मुहैया करेगी। संभावनाएं हममें मौजूद हैं। यही वह अंतर्तम का प्रकाश है जो हमें कदम-दर-कदम एक अवस्था से दूसरी अवस्था की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है और बदलती हुई परिस्थितियों में अपने-आप को समायोजित करने में हमारी मदद करता है। यही वह शक्ति है जो अतीत में अनेक बार व्यक्त हुई है और यही हमें यह आशा प्रदान करती है कि अगर हम सच्चे हैं, ईमानदार हैं, अनुशासित हैं और निष्ठावान हैं तो हम एक नए विश्व, बदलते हुए विश्व को ला सकते हैं जिसमें एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से भयभीत नहीं होगा। हर मनुष्य दूसरे मनुष्य को प्यार करेगा और एक ऐसे नए विश्व का निर्माण करने में सहायक होगा जिस पर मानवता नाज कर सकेगी

❑ आध्यात्मिक साक्षात्कार : आंतरिक प्रकाश ❑

❑ डॉ. एस. राधाकृष्णन ❑

आज बहुत-से ऐसे लोग हैं जो आध्यात्मिक भ्रम के शिकार होकर मस्तिष्क या अनीश्वरवादी हो जाना चाहते हैं। वे अपने-आप से सवाल भी करते हैं कि क्या कोई ऐसा धर्म नहीं हो सकता, जिसमें बौद्धिक निष्ठा और नैतिक विश्वास—दोनों के लिए ही स्थान हो? ये लोग, जो आधुनिक विज्ञान की संतान हैं, शांति-स्थापना के सिद्धांत की ओर उन्मुख हो जाते हैं, जो हमारे अपने देश की परंपराओं से मिलते-जुलते हैं। हमारे देश में भी ऐसे बहुत-से लोग हैं जो अपनी आत्मा के विरुद्ध आचरण को और आधुनिक युग के विकसित मस्तिष्क से मेल न खाने वाले अप्रामाणिक अंधविश्वासों को स्वीकार नहीं कर पाते, फिर भी वे आध्यात्मिक साक्षात्कार के लिए या परमतत्त्व के अंतर्दर्शन के लिए धर्म की ओर उन्मुख हुए। इन लोगों का कहना है कि परमात्मा ऊपर स्वर्ग में नहीं रहता, बल्कि मनुष्य की आत्मा में रहता है। शांतिसिद्धांतवादी इसे 'आंतरिक प्रकाश' कहते हैं अर्थात् एक ऐसी ज्योति जो मनुष्य के अंतर्तम में निवास करती है।

आत्मा की इस दुनिया में या शांतिस्थापना के इस सिद्धांत में एक ऐसे समुदाय की परिकल्पना है जो इस समुदाय के सदस्यों के जीवन का और हमारे देश का भी एक नियामक सिद्धांत है। यही कारण है कि हम यह मानते हैं कि मनुष्य का स्वरूप आध्यात्मिक है। मनुष्य का हृदय परमात्मा का निवास स्थान है; यह शरीर, जिसे हम देह कहते हैं, देवालय है। अगर सचमुच हम यह मानते हैं कि प्रत्येक मनुष्य में ईश्वर होने की संभावना मौजूद है, आत्मा का प्रकाश या अंतर्तम प्रकाश मौजूद है तो प्रत्येक मनुष्य को हमें सर्वाधिक संभावनाओं से युक्त मानना होगा और उसे ईश्वरीय गुणों से अलग करके दुत्कारने योग्य नहीं समझना होगा। प्रत्येक मनुष्य में परमात्मा मौजूद है।

यही लोकतांत्रिक आचरण का आधार है। लोकतंत्र सिर्फ राजनीतिक व्यवस्था या सुविधा नहीं, बल्कि आध्यात्मिक विश्वास है। आज हम अपनी राजनीतिक संस्थाओं में इस विश्वास के आधार पर आचरण करने का प्रयास कर रहे हैं। भारतीय संविधान में कुछ ऐसी बातें शामिल की गई हैं जिन्हें एक जमाने में हमने अपनाया था और सहा था और आज हम उन्हीं बातों की अपेक्षा कर रहे हैं। आप पाएंगे कि 'अस्पृश्यता' को अपराध माना जा रहा है, वर्गभेद और जातिभेद को मिटाया जा रहा है।

वर्गभेद तो अपरिहार्य है, लेकिन जातिभेद अनुचित और घातक है।

और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि हमें दूसरों के धार्मिक विचारों के प्रति सहिष्णुता का रुख अपनाना है। हमें न केवल उन्हें बर्दाश्त करना है, बल्कि उनकी सराहना भी करनी है। *अगर हम यह मानते हैं कि धर्म* परम सत्य को पाने का एक व्यक्तिगत प्रयास या दृष्टि है, तो हमें यह भी मानना होगा कि इसके अनेक मार्ग, अनेक नाम हैं। इन सभी बातों को हम मानते तो हैं, लेकिन अपने जीवन में इनका आचरण नहीं करते।

भारत में हिंदू, इस्लाम, बौद्ध, ईसाई, सिक्ख, यहूदी, जरथुस्त्र धर्म के अनुयाई रहते हैं। संविधान के अनुसार हम सबको यह आजादी है कि हम अपने-अपने धर्मों का पालन कर सकते हैं, अपने-अपने रीति-रिवाज निभा सकते हैं और हमें इन सबके पालन की वहां तक छूट है जहां तक यह आचरण दूसरे लोगों की चेतना को चोट न पहुंचाए और दूसरे लोगों की इसी प्रकार की आजादी में हस्तक्षेप न करें।

यह परंपरा हमारे देश में अनेक सदियों से कायम है। लोग अलग-अलग दिशाओं से भारत आए और उन्होंने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण अपनाए। जब तक ये लोग तीर्थयात्रियों के समान मार्ग पर चलते रहे, तब तक, हो सकता है कि वे लोग आपस में झगड़ते ही रहे हों, लेकिन जब ये अपनी मंजिल पर पहुंचते हैं तो महसूस करते हैं कि सभी लोग एक ही ईश्वरीय परिवार के सदस्य हैं, आत्मवान् होने के कारण सजातीय हैं। भले ही वे इस्लाम, ईसाई या बुद्ध के मार्ग से वहां पहुंचे हों; वे सब एक ही देवालय के सदस्य हैं। भले ही हम यीशु या बुद्ध या मोहम्मद के देवालय से संबद्ध न हों, लेकिन एक ही परमात्मा के देवालय के संबंध जरूर हैं। इसी परमात्मा को अलग-अलग धर्मों में अलग-अलग नामों से याद किया जाता है।

यह परंपरा हमारे यहां हजारों वर्षों से चल रही है। हमने हमेशा ही इस पर आचरण किया हो, ऐसी बात नहीं। हम अपने दुर्भाग्य के दिनों में इस मार्ग से भटक भी गए हैं, लेकिन जब तक कुछ लोग हमारे बीच ऐसे विद्यमान रहे, जो सामाजिक चेतना के सामने या समाज के मन-मस्तिष्क के सामने इस आदर्श को प्रस्तुत करने की क्षमता रखते हों, हम इसे एक आदर्श के रूप में मानते रहे।

हमें एक ऐसे सिद्धांत का पालन करना है जो बताता है कि धर्म को परमात्मा की अनुभूति के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। हमारे आपस में विवाद हो सकते हैं लेकिन ईश्वर के सामने हमारे सभी विवाद सुलझ जाते हैं और हम एक-दूसरे को एक ही परिवार का सदस्य मानने लग जाते हैं।

यह परंपरा हमें विरासत में मिली है और यही परंपरा लोकतांत्रिक विश्वास का आधार है। जब आप भाईचारे की धारणा से एक-दूसरे को प्यार करते हैं, जब आप सभी लोगों को ईश्वर की संतान समझते हैं तो एक जाति और दूसरी जाति में, इसी प्रकार एक राष्ट्र और दूसरे राष्ट्र के बीच कोई वास्तविक अंतर नहीं रह जाता। न तो कोई शासक जाति है और न ही शासक राष्ट्र और न ही शासक वर्ग। हम सभी लोग इसी विश्व के नागरिक हैं और ईश्वर की संतान हैं।

इसलिए इन सभी दीवारों और अंतर को खत्म किया जाना चाहिए। हमें अपनी विचारप्रक्रिया में इस धारणा को स्थान देना होगा कि किसी व्यक्ति को दूसरे के नियमन का अधिकार नहीं है और प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए एक व्यवस्था चुनने में स्वतंत्र है। दूसरे शब्दों में हर समुदाय को इस बात की छूट होनी चाहिए कि वे अपने जीवन के लिए किसी भी प्रकार की शासन-व्यवस्था को चुन सकें। सभी व्यक्तियों की स्वतंत्रता का सिद्धांत ('सभी मनुष्य समान हैं....सभी मनुष्यों को जीवन, स्वतंत्रता और खुशी पाने का अधिकार है') जिसे अमेरिका के संविधान में अंकित किया गया है, आज इस विश्व के लगभग सभी संविधानों का उद्देश्य है।

इस भावना ने विश्व के अन्य बहुत-से लोगों को भी अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए लड़ने की प्रेरणा दी और इसके कारण अनेक दलित लोगों का उद्धार हुआ है तथा अनेक गुलाम देशों ने राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त की है। अब्राहम लिंकन भी गुलामों को स्वतंत्र करने के लिए इसी भावना से प्रेरित हुए थे। यह वही व्यक्ति थे जिन्होंने यह घोषणा की थी कि किसी भी राष्ट्र के लिए यह संभव नहीं है कि वह आधा स्वतंत्र हो और आधा गुलाम। यह उन्हीं का साहस था कि उन्होंने अपने सिद्धांत पर अमल किया। संविधान में इस प्रकार की बातों को अंकित करना बहुत आसान है, लेकिन उन्हें कार्यान्वित करना उतना ही कठिन है।

आज भी यह लक्ष्य अपनी जगह कायम है। मार्ग भी सुलभ है और हमें यह प्रयास करना है कि इस विश्व में कोई

भी व्यक्ति गुलाम न रहे। अंतर्तम प्रकाश के प्रसिद्ध सिद्धांत का प्रत्यक्ष परिणाम यह है कि ये कृत्रिम असमानताएं, जिनके नीचे लोग तपे हैं या स्त्रियों पर अत्याचार हुए हैं, पूरी तरह से मिटा दिए जाएं।

इसलिए न केवल राष्ट्रों की राजनीतिक स्वतंत्रता, बल्कि सभी मनुष्यों की सामाजिक समानता की धारणा भी प्रत्यक्ष रूप से शांतिस्थापना-संबंधी सिद्धांत या अंतर्तम के इस सिद्धांत से ली गई है कि प्रत्येक व्यक्ति को उच्चतर आध्यात्मिक जीवन जीने के लिए समान रूप से सक्षम समझना चाहिए।

इसमें कोई संदेह नहीं कि इस वक्त हम सभी लोग भ्रम के शिकार हैं। हम यह मानते हैं कि सुरक्षा के लिए शस्त्रास्त्र जमा करना बहुत जरूरी है। यह भी समझते हैं कि शस्त्रास्त्रों का यह भंडार गलती से या दुर्घटनावश मानव जाति के विनाश का कारण भी बन सकता है। हम जानते हैं कि प्रत्येक मनुष्य में दो परस्पर विरोधी भावनाएं होती हैं। मनुष्य एक आत्मविरोधी व्यक्ति है, जिसमें गौरव और नीचता, दोनों की ही बातें हो सकती हैं। वह इस सृष्टि का सबसे श्रेष्ठ प्राणी है और साथ ही सबसे नीच भी।

मनुष्य में ये दोनों परस्पर विरोधी भावनाएं हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य में समन्वय स्थापित किया जाए और इस बात का प्रयत्न किया जाए कि ईश्वरीय गुण उसके संपूर्ण जीवन पर छाए रहें और निकृष्ट प्रकृति की निम्नतम वासनाओं पर रोक लगाई जाए, उनका दमन किया जाए ताकि मनुष्य अपने गौरवपूर्ण भविष्य का स्वयं साक्षी हो सके। यही कारण है कि हम और आगे बढ़ना चाहते हैं। हमने अभी अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं किया है। हम संघर्षरत हैं और रास्ते पर आगे बढ़ रहे हैं। प्रकाश भी है और अंधकार भी है। ये दोनों तत्त्व प्रत्येक मनुष्य के भीतर एक-दूसरे के साथ संघर्षरत हैं और यह जरूरी है कि अंधकार को पराजित किया जाए और गलतफहमी की धुंध को मिटाया जाए ताकि प्रकाश हमारे सभी कार्यों को प्रकाशमय बना सके।

मुझे विश्वास है कि यदि ईश्वर के प्रति हमारा विश्वास सचमुच सच्चा है और यह किसी भी लाभ के लिए नहीं है बल्कि यह उस आग की तरह है जो हमारे भीतर पुरानी घटनाओं को भस्म कर रही है और हमारी प्रकृति का कायाकल्प कर रही है, तो आप यह मानेंगे कि आपके लिए यह काफी नहीं है कि आप विश्व को ज्यों-का-त्यों अपने अनुरूप बनाएं, बल्कि आपको अपनी संपूर्ण प्रकृति में परिवर्तन लाना होगा, जिसके परिणामस्वरूप हम सदियों की अपनी आदतों को बदल सकेंगे और यह देख सकेंगे कि एक जमाने में जो बात संभव थी आज उसकी तनिक भी अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि इससे भयानक और विनाशकारी दुष्परिणाम होने की आशंका है।

परिस्थितियां बदल गई हैं। एक जमाने में युद्ध का प्रयोग न्याय की स्थापना के लिए किया जाता था, लेकिन न्यूक्लीय संदर्भ में युद्ध को सहन नहीं किया जा सकता। न न्याय रहेगा और न अन्याय, बल्कि इस न्यूक्लीय युग में मानवता ही नष्ट हो जाएगी। इसलिए यह जरूरी है कि मनुष्य, जिसने कितनी ही बार अपने-आप को परिवर्तित किया है, एक बार फिर अपने में परिवर्तन लाए। वह इतिहास के एक ऐसे महत्त्वपूर्ण दौर में खड़ा है जहां मानवता को एक नए युग का सूत्रपात करना है। इसलिए उसे अपनी राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय आचरण की धुरी को ही बदलना होगा। यदि मनुष्य को जिंदा रहना है तो उसे अपने में यह परिवर्तन लाना होगा, यदि वह यह परिवर्तन नहीं लाता है तो उसका नामोनिशान बाकी नहीं रहेगा।

हमारा अंतर्तम प्रकाश हमें अपने-आप में परिवर्तन लाने की संभावना की ओर संकेत करता है। इतिहास साक्षी है कि हममें अनेक बार परिवर्तन हुए हैं। आखिर वह क्या चीज है जो हमारी प्रगति का कारण बनी, जिसकी वजह से हमने तमाम उपलब्धियां हासिल कीं और जिसके कारण हम इस विश्व में एकता स्थापित करने में कामयाब हो सकते हैं और यही एकता हममें से प्रत्येक को खाना, कपड़ा मुहैया करेगी। संभावनाएं हममें मौजूद हैं। यही वह अंतर्तम का प्रकाश है जो हमें कदम-दर-कदम एक अवस्था से दूसरी अवस्था की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है और बदलती हुई परिस्थितियों में अपने-आप को समायोजित करने में हमारी मदद करता है। यही वह शक्ति है जो अतीत में अनेक बार व्यक्त हुई है और यही हमें यह आशा प्रदान करती है कि अगर हम सच्चे हैं, ईमानदार हैं, अनुशासित हैं और निष्ठावान हैं तो हम एक नए विश्व, बदलते हुए विश्व को ला सकते हैं जिसमें एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से भयभीत नहीं होगा। हर मनुष्य दूसरे मनुष्य को प्यार करेगा और एक ऐसे नए विश्व का निर्माण करने में सहायक होगा जिस पर मानवता नाज कर सकेगी।

यही वह सिद्धांत है जो मनुष्य को, अपने-आप को मात्र एक पदार्थ के रूप में या घटनाचक्र की एक कड़ी के

रूप में या कृत्रिम या दैवीय आवश्यकताओं के शिकार के रूप में न देखने का निर्देश देता है, बल्कि उसे यह सिखाता है कि मनुष्य को प्रकृति पर निर्णय करने का अधिकार है। मनुष्य प्रकृति का मात्र एक टुकड़ा नहीं, उसमें गैरप्राकृतिक अंश भी मौजूद हैं। वह प्रकृति को काबू में करता है, प्रकृति को बदलता है, तोड़ता-मरोड़ता है और उसे अपने आदर्शों के अनुरूप बना लेता है।

मनुष्य व्यक्ति भी है और आदर्श भी। अगर हम उसके व्यक्तिनिष्ठ चरित्र, आंतरिकता या स्वतंत्रता की अनदेखी करें तो इससे हम स्वयं ही नष्ट हो जाएंगे। अतीत की सीख हमें यह आशा प्रदान करती है कि हम अपने भविष्य को अपने अनुरूप बना लें ताकि हम आज जो वर्तमान हैं, कल उससे भिन्न हों। हमें पुराने आचरणों को विरासत में स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है। हम बदलती हुई परिस्थितियों के साथ और नए वातावरण के साथ अपने-आप को समायोजित कर लेंगे और यह समझ लेंगे कि इस नए वातावरण में पुरानी लीक पर चलने का मतलब है मानवता का विनाश। अगर हम इसको समझ पाएं तो हम अपने-आप को और इस विश्व को बदलने में समर्थ हो जाएंगे और एक ऐसे विश्व की स्थापना करेंगे जिसमें शांति और मैत्री का संदेश गूंजता हो।

विश्वविद्यालयों में हमें यह सिखाया जाता है कि हम एक-दूसरे से सीखें, एक-दूसरे के बारे में जानें, अन्य लोगों के विश्वासों और कार्यों को समझें और आपसी सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश करें। सभी धर्म, सभी संस्कृतियां, सभी सभ्यताएं एक दिन मिलकर एक हो जाएंगी और हम यह देख पाएंगे कि भले ही हममें एकरूपता न हो, फिर भी हममें मेल-मिलाप और एकता की भावना है और हम सब मानते हैं कि मानवता के आध्यात्मिक जीवन के पोषण के प्रमुख कार्य में हम सब भागीदार हैं, सत्ता या आधिपत्य के लिए प्रतिद्वंद्वी नहीं हैं।

विज्ञान, अध्यात्मवाद या धर्म—तीनों ही हमें मनुष्य की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का पाठ पढ़ा सकते हैं। जब यह कहा जाता है कि वैज्ञानिक विकास का अर्थ है परावलंबिता का महत्त्व या वातावरण का महत्त्व, तो हमें इस प्रकार की अफवाहों का खंडन करना चाहिए और कहना चाहिए कि 'वैज्ञानिक मनुष्य की दायित्व की भावना को उजागर करता है। मनुष्य की वातावरण पर विजय पाने, उसे बदलने और उसे अपने उद्देश्यों और आकांक्षाओं के अनुरूप ढालने की क्षमता को प्रकट करता है। वह अपनी भौतिक सीमाओं से आगे बढ़कर प्राकृतिक आवश्यकताओं का शिकार होने से बचाने का प्रयत्न करता है। वह प्रकृति के हाथ का मात्र खिलौना या एक अंश बनकर संतुष्ट नहीं रह सकता। वह मनुष्य की आत्मा की निजता, स्वतंत्रता और व्यक्तिनिष्ठता में विश्वास करता है। वह यह मानता है कि मनुष्य व्यक्ति और पदार्थ का यौगिक मिश्रण है।' अगर हम अपने व्यक्तिनिष्ठता के गुणों की अनदेखी करें और उन्हें केवल एक वस्तु, मशीन या पदार्थ के रूप में समझें तो हम अपने-आप का अमानवीयकरण कर लेंगे।

आध्यात्मिक इच्छा की वास्तविकता का आधार भी बिल्कुल यही है कि मनुष्य प्रकृति और कालचक्र के चंगुल से अपने-आप को मुक्त करे। विश्व के सभी अध्यात्मवादी, भले ही उनका आधार धार्मिक भावना हो या कोई और विरोधी भावना, हमेशा एक ही बात पर जोर देते रहे हैं और वह है, हम किस प्रकार ह्रास और विनाश की ओर ले जाने वाली प्रवृत्तियों से छुटकारा पा सकते हैं? हम किस प्रकार मृत्यु से बच सकते हैं? अध्यात्मवादी कहते हैं, 'अगर काल ही अंतिम है और यह विश्व प्रलय और सृष्टि का मात्र एक क्रम है, अगर यह अपरिहार्य है, अगर हर चीज नाशवान है तो क्या इस विश्व का कोई मूल्य है? इस विश्व की कोई सार्थकता है? क्या हम केवल कालचक्र के ही शिकार होते रहेंगे? क्या कोई लक्ष्य भी है?'

मृत्यु और विनाश कालचक्र की क्रूर नियति हैं और इनसे बचने की इच्छा ही इन सब प्रयत्नों का आधार है। एक महान अध्यात्मवादी ने कहा था, 'जो लोग इस पर विचार नहीं करते, उनके लिए यह एक क्षणभंगुर भय हो सकता है, लेकिन जो लोग सोचते हैं, मनुष्य की अवस्था पर गंभीरतापूर्वक विचार करते हैं, उनके लिए यह एक मौलिक भय है, जिसकी जड़ें हमारे भीतर हैं।' क्या इस भय से हम छुटकारा नहीं पा सकते?

इसका उत्तर यह है कि हम इससे छुटकारा पा सकते हैं। सभी अध्यात्मवादियों और सभी धार्मिक संतों का यही विश्वास है। इस मृत्यु की देह से मेरी कौन रक्षा करेगा? सूली पर चढ़कर अपना बलिदान करने वाले भगवान के शब्द भी इस विषय पर अंतिम शब्द नहीं कहे जा सकते। यीशु ऊपर उठ गए हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि आत्मा अमर है और उस पर कालचक्र का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। आत्मा सभी चीजों से ऊपर है। यह उस दिव्य अग्नि

की चिंगारी है जो प्रत्येक मनुष्य के अंतर्तम में विद्यमान है, जिसमें कोई परिवर्तन नहीं होता और जो प्राकृतिक आवश्यकताओं की भी मोहताज नहीं है।

इसलिए जब लोग यह कहते हैं कि भविष्य अपरिहार्य है, इंसान के हाथ में तो कुछ नहीं है, वह तो प्रकृति का दास है, तो ये लोग मानवता या हमारी प्रगति के संपूर्ण इतिहास की अवहेलना करते हैं। हर अवस्था में प्रगतिशील, मुक्त और जिम्मेदार मनुष्य वातावरण पर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर ही लेता है।

इसलिए आज इस गतिरोध की अवस्था में, जब हमारे पास न्यूक्लीय शस्त्रों के घातक भंडार भरे पड़े हैं और जब लोग दुर्घटनावश या गलती से किसी अव्यक्त आशंका की ओर संकेत करते हैं तो हम प्रत्येक व्यक्ति में निहित इस चिंगारी की अनदेखी कर देते हैं। हम यह मानने लगे हैं कि सुनहरे भविष्य का तो प्रश्न ही नहीं है और न ही मनुष्य अपनी असीम क्षमता से भविष्य की अपरिहार्यता को मिटा सकता है।

जहां तक मनुष्य का संबंध है, उसके लिए अपरिहार्य जैसी कोई चीज नहीं है। हम मनुष्य की प्रकृति को अपमानित कर रहे हैं, उसका अमानवीयकरण कर रहे हैं और मानवता को यंत्र-मानव बनाकर छोड़ रहे हैं। वास्तव में यह बात संपूर्ण विज्ञान, अध्यात्म और धर्म के खिलाफ है। मेरा विचार है कि विज्ञान को भी हमें यह मनवाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए कि पदार्थ सर्वशक्तिमान है और आवश्यकता भी सर्वशक्तिमान है। इससे मानव-मन की श्रेष्ठता का पता चलता है। अगर मानव-मन अपनी मानवता को छोड़ देता है और अपने-आप को एक पदार्थ के रूप में परिणत कर लेता है, हठधर्मी हो जाता है और मानव प्रकृति की रचनात्मकता में अंतर नहीं हो सकता। जब वह असीम संभावनाओं को मानने से इनकार कर देता है तो वह मात्र एक पदार्थ बनकर रह जाता है। इस विषय में ईश्वर नाम की ऐसी कोई चीज नहीं जो भावी घटनाओं का पूरी तरह से नियमन करती हो। हम उस दिव्यात्मा के सहयोगी निर्माता हैं। हर वैज्ञानिक, हर औद्योगिकीविज्ञ सह-निर्माता है। वह जो-कुछ भी करता है, ईश्वर के अबाध अधिकार की तरह ही करता है। ईश्वर मनुष्य का उपयोग करता है। प्रत्येक मनुष्य के भीतर एक अमर चिंगारी या रचनात्मक तत्त्व मौजूद है। अगर हम उसकी अनदेखी करें तो हम अपनी ही शिक्षा और अपनी ही मानवता के प्रति झूठे और बेवफा हो जाएंगे।

इस विश्व का उद्देश्य है, मनुष्य को एक ऐसी व्यक्ति-चेतना के रूप में परिवर्तित करना जो सभ्य हो, क्रूरता में विश्वास न करती हो और मनुष्य पर अनावश्यक रूप से किए जाने वाले अत्याचारों का डटकर विरोध करती हो। जब तक सभी असमानताएं मिट नहीं जातीं, बुराइयों को जीत नहीं लिया जाता, तब तक मनुष्य का काम अधूरा है। और वह अपने इस अधूरे काम को अपने अंतर्तम में निहित ईश्वरीय या दिव्य शक्ति से ही पूरा कर सकता है। यह शक्ति हमारे भीतर असुर शक्तियों से संघर्ष कर रही है। जितना अंधकार है उतना ही प्रकाश भी है और जब तक मनुष्य अपनी सच्ची आत्मा का प्रतिनिधि नहीं बन जाता, तब तक प्रकाश अंधेरे को लील नहीं सकता। ❖

कृपया ध्यान दें

जैन भारती के लिए रचनाएं भेजते समय कृपया निम्नोक्त बिंदुओं का अवश्य ध्यान रखें—

● आपकी रचना कम से कम 1500–2000 शब्दों से लेकर 2500–3000 शब्दों के मध्य हो। कुछेक आलेख जैन भारती के एक पृष्ठ से भी कम आकार के होते हैं, जो हमारे लिए अपर्याप्त हैं। जैन भारती के लिए ऐसे आलेख काम में लेना संभव नहीं। अतः इतने छोटे आलेख न भेजें।

●● रचनाएं 'फुल स्केप' कागज पर एक तरफ हाथ से लिखी या टाइप की हुई हों। पूरा हाशिया अवश्य छोड़ें। दो पंक्तियों के बीच भी पर्याप्त स्थान होना जरूरी है।

●●● फोटोकॉपी न भेजें अथवा सुस्पष्ट हो तो ही भेजें।

कृपया उपरोक्त हिदायतों की ओर पूरा ध्यान देकर हमें सहयोग करें।

अहिंसा और अपरिग्रह के साथ-साथ भगवान महावीर की शिक्षाओं का तीसरा मुख्य बिंदु है 'अनेकांतवाद'। यह वह मौलिक विचार बिंदु है जो जैन दर्शन को सभी दर्शनों की अपेक्षा अद्वितीयता प्रदान करता है। यह महावीर के अत्यंत उदारवादी, समन्वयवादी एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण का परिचायक है। उन्होंने समाज में शांति और व्यवस्था के लिए जहां एक ओर अहिंसा का उपदेश दिया और आर्थिक विषमता और ऊंच-नीच के भाव को समाप्त करने के लिए अपरिग्रह की शिक्षा दी, वहीं वैचारिक और दार्शनिक स्तर पर मानव जीवन में समन्वय और सह-अस्तित्व की भावना स्थापित करने के लिए अनेकांतवाद के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। अनेकांत एकांतवाद का विरोधी है। महावीर ने अन्यान्य मतों को भी किसी एक दृष्टिकोण से सम्यक् माना है

❑ महावीर और विश्व-समस्याएं ❑

❑ डॉ. विजयरानी ❑

संदर्भ
❑ महावीर जयंती ❑

समग्र विश्व आज असंख्य गंभीर समस्याओं से घिरा हुआ है। जिधर देखो उधर ही हाहाकार है, चीत्कार है, दुख-दर्द, भय-आतंक, असंतोष, युद्ध और संघर्ष का-सा वातावरण है। व्यक्ति, समाज और राष्ट्रों में परस्पर सहमति, समन्वय और सह-अस्तित्व की भावना का नितांत अभाव है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को संदेह और अविश्वास की दृष्टि से देखता है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की धरती को बरबस हड़प लेना चाहता है। दो विश्व-युद्धों और उनके दुष्परिणामों को भोगने के बावजूद संसार के लगभग प्रत्येक भूभाग में किसी-न-किसी कारण से युद्ध की-सी ज्वाला धधक रही है। हर दिन समाचार-पत्रों का कोई एक कोना हत्या, अपहरण, चोरी, डकैती, मृत्यु और विनाश के समाचारों से भरा होता है। इस विध्वंस-लीला के कारण अनेक हो सकते हैं। यथा—अत्यधिक आर्थिक विषमता, भूमि एवं अन्य संसाधनों से संतुष्ट न होकर दूसरे की संपत्ति को हड़पने की लालसा, असामान्य जनसंख्या-वृद्धि, कामुकता और विलासिता में वृद्धि, व्यक्ति, समाज और राष्ट्रों के बीच परस्पर विचारों और धारणाओं को समझने में अनुदारता और विवेकहीनता, बलवानों में मद-मोह और अहंभाव का आधिक्य, धार्मिक असहिष्णुता, गरीबी के कारण दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति न होना, पर्यावरण-दूषण आदि। तात्पर्य यह है कि विश्व में सर्वत्र धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक समस्याएं मुंह बाये खड़ी हैं।

आणविक, रासायनिक और नाभिकीय शस्त्रास्त्रों की होड़ के इस युग में प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक राष्ट्र अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है। किसी को भी कोई सही मार्ग नहीं सूझ रहा है कि इस भयाकुल संसार में शांत, सरल और निरापद जीवन किस प्रकार व्यतीत क्रर सके। विश्व स्तर की इन सभी समस्याओं को दृष्टि में रखते हुए वर्ष 2000 में अगस्त 29 से सितंबर 9 के मध्य विश्व संगठन 'यू. एन. ओ.' ने अमेरिका के न्यूयार्क शहर में सहस्राब्दी विश्व-शांति सम्मेलन (Millenium World Peace Summit) का आयोजन किया। जिसमें संसार-भर के विभिन्न धर्मों—हिंदू, जैन, बौद्ध, इस्लाम, सिख, ईसाई, बहाई आदि के धार्मिक और आध्यात्मिक गुरुओं, विचारकों, संतों और महात्माओं ने भाग लिया। उन्होंने मतैक्य से इस आवश्यकता पर बल दिया कि भविष्य में आने वाली पीढ़ियों को युद्ध की विभीषिका और अन्य विकट समस्याओं से बचाने के लिए हमें अपने नैतिक

मूल्यों सहित अहिंसा, सत्य, प्रेम, क्षमा, दया, धैर्य, समन्वय, सहयोग, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि को अपनाना होगा। उन सभी विचारकों, संतों और महात्माओं ने पूरी एकता और दृढ़ता के साथ सर्वधर्म समभाव के साथ-साथ सभी प्रकार की हिंसाओं के त्याग, लैंगिक और वर्गीय समानता, गरीबी उन्मूलन और पर्यावरण संरक्षण आदि बिंदुओं का समर्थन किया। इस विश्व-शांति सम्मेलन में भारतीय विचारकों और धार्मिक गुरुओं की संख्या सबसे अधिक थी, जिन्होंने भारतीय सभ्यता, संस्कृति, अध्यात्म और उच्च नैतिक मूल्यों पर विशेष बल दिया और विश्व-समस्याओं के समाधान की दिशा में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रतिपादित की।

भारत के गौरवपूर्ण इतिहास की ओर दृष्टिपात करें तो ऐसे ऋषि-मुनि, धार्मिक उपदेशक, नीतिविशारद, समाज-सुधारक और मनीषी दार्शनिकों के नाम उभर कर सामने आते हैं जिन्होंने समाज का भिन्न-भिन्न कालों में, भिन्न-भिन्न प्रकार से मार्ग-दर्शन किया। उनके उपदेश आज के युग में भी उतने ही उपादेय हैं जितने कि वे प्राचीन काल में रहे होंगे। मर्यादा पुरुषोत्तम राम, युगपुरुष श्रीकृष्ण, महर्षि याज्ञवल्क्य, आदिपुरुष मनु, भगवान महावीर और बुद्ध आदि ऐसे ही नाम हैं जिन्होंने संसार के दुखों का निवारण कर उसे सन्मार्ग की ओर उन्मुख किया।

महामानव महावीर का जन्म लगभग 2600 वर्ष पूर्व 27 मार्च 598 ईस्वी पूर्व में बिहार के कुंदग्राम कुंदलपुरा स्थान पर गणराज सिद्धार्थ और त्रिशलादेवी के घर में हुआ था। यह महामानव ज्ञानप्राप्ति से पूर्व वर्धमान और ज्ञानप्राप्ति के बाद महावीर स्वामी, वर्धमान महावीर या 'निगण्ठ नातपुत्र' के नाम से विख्यात हुआ। तीर्थंकर महावीर के मन में आत्मकल्याण के साथ-साथ विश्व-कल्याण की भावना बलवती थी। इसी भावना ने उनको तीर्थंकर बना दिया।

तीर्थंकर महावीर युगद्रष्टा पुरुष थे। उन्होंने अपने घोर तप, साधना और केवल-ज्ञान की शक्ति से वस्तुतत्त्व का सर्वांगीण साक्षात्कार किया था। अर्हत् बनने के बाद उन्होंने सामान्यजन की समस्याओं के समाधान के लिए 'त्रिरत्न' के रूप में सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का उपदेश दिया। उनका यह उपदेश अत्यंत गहन होते हुए भी सर्वथा व्यावहारिक और लोकसम्मत था। सम्यक् चारित्र के अंतर्गत जिन पांच महाव्रतों के अनुपालन की देशना उन्होंने दी, वे हैं—सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। ये पांचों महाव्रत व्यक्ति और समाज के सुंदर और सुव्यवस्थित विकास की दृष्टि से सदैव सामयिक माने गए। आधुनिक समाज में भी व्याप्त विषमता, संघर्ष और मानसिक तनाव को दूर करने की दृष्टि से इन पांचों का अत्यधिक महत्त्व है। इनमें भी 'अहिंसा' और 'अपरिग्रह' पर विचार किया जाना हर दृष्टि से अभीष्ट है।

महावीर की शिक्षाओं का सारतत्त्व अहिंसा है। इसे उन्होंने बड़े व्यापक दृष्टिकोण से देखा और समझाया है। उनके अनुसार आत्मा में क्रोध, लोभ, मोह आदि भावों की उत्पत्ति होना हिंसा है और इनका अभाव ही अहिंसा है।[1] महावीर स्वामी द्वारा हिंसा-अहिंसा की इस प्रकार की परिभाषा का क्या भाव हो सकता है? यदि विश्लेषण किया जाए तो यह समझा जा सकता है कि आत्मा में क्रोध, मोहादि भावों की उत्पत्ति ही परिणामतः कायिक, वाचिक, या मानसिक हिंसा में परिणत होती है। अतः प्रारम्भ में ही हृदय में इन भावों की उत्पत्ति का निवारण किया जाना चाहिए। तभी कायिकादि हिंसाओं से बचा जा सकता है।

अहिंसा के सामान्य अर्थ को समझाते हुए कहा गया है—

न यत्प्रमादयोगेन जीवित व्यपरोपणम्।
चराणां स्थावराणां च तदहिंसाव्रत मतम्।।[2]

अर्थात् प्रमाद या असावधानीवश भी चर और अचर अर्थात् प्राणीमात्र का विनाश नहीं किया जाए तो वह अहिंसा भाव कहलाता है। इस प्रकार सभी जीवों के प्रति समदृष्टि रखने के कारण भगवान महावीर ने जीवों में पारस्परिक समादर, प्रेम और मैत्रीभाव को प्रस्फुटित होते देखना चाहा। वस्तुतः गीता और उपनिषद् में प्रकाशित 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना हमें जैन दर्शन की शिक्षाओं में प्रखर रूप से दिखाई देती है। उनकी दृष्टि में वर्ण, वर्ग, जाति, देश, काल आदि का कोई भेदभाव नहीं है। प्रत्येक जीव को एक-दूसरे के साथ आत्मवत् व्यवहार करने की बात विशद रूप में कही गई है।

भगवान महावीर का यह निश्चित सिद्धांत है कि विश्व में अहिंसा की स्थाई प्रतिष्ठा मनःशुद्धि और वाग्शुद्धि के बिना नहीं हो सकती। हम भले ही शरीर से दूसरे प्राणियों की हिंसा न करें, लेकिन यदि हमारा मन विषाक्त और वाणी दुष्टा है, दूसरों को पीड़ा पहुंचाने वाली है—तो भी वह हिंसा ही कहलाएगी। इसीलिए श्रमण महावीर ने कायिक, वाचिक और मानसिक अहिंसा अर्थात् सर्वांगीण अहिंसा की

भावना का प्रशस्त मार्ग सुझाया। इस प्रकार की अहिंसा को अपनाने से व्यक्ति का व्यक्ति से और समाज का दूसरे समाज से व्यवहार सुंदर और स्वस्थ बनेगा। अहिंसा के इस सिद्धांत को यदि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी व्यवहार में लाया जाए तो अवश्य ही विश्व में व्याप्त तनाव, संघर्ष और युद्ध तथा वैरभाव की समस्या का समाधान मिल सकता है। अहिंसा के प्रचार-प्रसार और व्यवहार से विभिन्न देशों में चल रहे सीमा-विवाद, आतंकवाद और अस्त्र-शस्त्रों की होड़ समाप्त हो सकती है।

अपरिग्रह : भगवान महावीर इस तथ्य से अच्छी प्रकार परिचित थे कि आर्थिक विषमता और आवश्यक उपभोग्य सामग्री का एक स्थान पर संग्रह ही सामाजिक जीवन को दूषित करने का कारण बनता है। इन्हीं के कारण समाज में उच्च और निम्न, सबल और निर्बल, धनी और निर्धन वर्गों जैसी विसंगतियां उत्पन्न होती हैं। इसीलिए महावीर स्वामी ने 'अपरिग्रह' के सिद्धांत पर बल दिया। 'अपरिग्रह' का अर्थ है सभी भाव-पदार्थों के प्रति मूर्च्छा (इच्छा) का सर्वथा परित्याग। क्योंकि इच्छा के द्वारा असत् अर्थात् अवांछनीय वस्तुओं में चित्तविप्लव या चित्तविकार उत्पन्न हो जाता है। जैसा कि कहा भी गया है—

सर्वभावेषु मूर्च्छायास्त्यागः स्यादपरिग्रहः।
यदसत्स्वपि जायेत मूर्च्छया चित्तविप्लवः।।[3]

वस्तुतः 'परिग्रह' से तात्पर्य है पदार्थों में स्वत्व और ममत्व की बुद्धि का होना। इसका बाह्य स्वरूप है—धन-धान्यादि पदार्थों का संचयन और आंतरिक स्वरूप है—मूर्च्छा अर्थात् मन में इच्छा या आसक्ति भाव का रहना। कहा जा सकता है कि संसार की विभिन्न वस्तुओं के प्रति आकर्षण और उनको अपना बना कर अपने पास रखने की इच्छा ही परिग्रह है। लोभ और मोह रूपी कषाय से आवृत चेतना के कारण ही परिग्रह की भावना फलती है। अतः किसी भी व्यवस्था की समीचीनता-असमीचीनता में मुख्य हाथ कषायों की उपशांति और अनुपशांति का होता है। जहां ये—लोभ, मोह, आसक्ति आदि कषाय उत्तेजित होंगे, वहां अशांति, वैषम्य और दुख का साम्राज्य होगा। अतः प्रत्येक व्यक्ति और राष्ट्र का यह दायित्व है कि वह कषायों की प्रचंड ज्वाला से अपने-आप को बचाकर रखे तथा धन-धान्यादि बाह्य वस्तुओं के परिग्रह (संचयन) का परिसीमन करे।

आर्थिक विषमता और अनर्थ हिंसा को रोकने के लिए जैन दर्शन के उपासक दशासूत्र में पंद्रह प्रकार के कारोबार (व्यापार) करने का निषेध किया गया है। आधुनिक अर्थ-शास्त्रियों और अर्थ-व्यवस्थापकों को उनका गूढ़ अध्ययन करना चाहिए।

अपरिग्रह का सिद्धांत सीमा-विवाद और उपनिवेशवादी संघर्ष तथा भूमि और संपत्ति आदि से संबद्ध संघर्षों को भी समाप्त करने में सहायक हो सकता है—यदि दिशा-परिमाण व्रत का अनुपालन किया जाए। तात्पर्य यह है कि यदि व्यक्ति और राष्ट्र अपनी सीमाओं में रहें और दूसरे की भूमि, सीमा, संपत्ति को हासिल करने की अनधिकार चेष्टा न करें तो देशों के बीच सीमा-विवाद ही न हो और भूमि आदि विवादों को लेकर न्यायालयों के जो बार-बार चक्कर लगाने पड़ते हैं, वे सब भी समाप्त हो जाएं।

इस प्रकार 'अपरिग्रह' का उपदेश विश्व स्तर पर अनेक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर सकता है।

अहिंसा और अपरिग्रह के साथ-साथ भगवान महावीर की शिक्षाओं का तीसरा मुख्य बिंदु है 'अनेकांतवाद'। यह वह मौलिक विचार बिंदु है जो जैन दर्शन को सभी दर्शनों की अपेक्षा अद्वितीयता प्रदान करता है। यह महावीर के अत्यंत उदारवादी, समन्वयवादी एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण का परिचायक है। उन्होंने समाज में शांति और व्यवस्था के लिए जहां एक ओर अहिंसा का उपदेश दिया और आर्थिक विषमता और ऊंच-नीच के भाव को समाप्त करने के लिए अपरिग्रह की शिक्षा दी, वहीं वैचारिक और दार्शनिक स्तर पर मानव जीवन में समन्वय और सह-अस्तित्व की भावना स्थापित करने के लिए अनेकांतवाद के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। अनेकांत एकांतवाद का विरोधी है। महावीर ने अन्यान्य मतों को भी किसी एक दृष्टिकोण से सम्यक् माना है। उन्होंने वस्तुस्वरूप का निर्धारण करते हुए कहा है कि वह अनंत धर्मात्मक है, द्रव्य गुण पर्यायात्मक है। उसमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य—तीनों ही धर्म विद्यमान हैं। उसे शाश्वतवादी के समान केवल नित्य कहें तो भी ठीक नहीं, केवल अनित्य (क्षणिक) कहें तो भी ठीक नहीं। उसमें भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से नित्य और अनित्य—दोनों धर्म विद्यमान हैं। एक वस्तु में विभिन्न दृष्टियों और विविध अपेक्षाओं से अनंत धर्म हो सकते हैं। इसीलिए तो जैन मत में सत् का लक्षण है—'उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त सत्'—अर्थात् सत् पदार्थ में उत्पत्ति, विनाश और ध्रौव्य तीनों ही धर्म होते हैं। यदि एक स्वर्णकार स्वर्ण के हार को तोड़कर कंगन बनाता है तो इसमें हार का विनाश और कंगन का उत्पाद है, किंतु इस उत्पाद और विनाश होने पर भी स्वर्ण

का अस्तित्व ज्यों-का-त्यों बना रहता है। वह ध्रुव है। इसी प्रकार पारमार्थिक तत्त्व का स्वरूप भी जानना चाहिए।

यदि व्यावहारिक और सामाजिक दृष्टि से अनेकांत सिद्धांत की उपयोगिता का आकलन किया जाए तो यह कहना उचित होगा कि यह महावीर की अविकल सूझ-बूझ और दूरदृष्टि का परिणाम था। उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर यह पाया कि प्रत्येक वस्तु अनेक धर्म वाली होती है और प्रत्येक व्यक्ति उसे अपने ही नवीन दृष्टिकोण से देखता और समझता है। इसलिए भिन्न-भिन्न व्यक्ति यदि एक ही वस्तु को भिन्न प्रकार से समझें और वर्णन करें तो कोई अनौचित्य नहीं। प्रत्येक के कथन में उनकी दृष्टि से सत्यता हो सकती है। इसीलिए महावीर ने अत्यंत उदार भाव रखते हुए अनेकांतवाद और उसके प्रतिपादन के लिए 'स्याद्वाद' का सूत्रपात किया। वस्तव में अनेकांत दृष्टि अत्यंत व्यावहारिक और सामंजस्यपूर्ण दृष्टि है। इसको अपनाने से पारस्परिक कटुता, द्वेष आदि की समाप्ति होकर एक सद्भावपूर्ण वातावरण स्थापित हो सकता है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि भगवान महावीर भारत की ही नहीं, विश्व की महान विभूति थे, जिन्होंने तत्कालीन व्यक्ति और समाज की सुख-शांति के लिए अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकांत जैसे रक्षासूत्र प्रदान किए। ये रक्षासूत्र आज के युग में भी मानवमात्र के लिए उतने ही प्रासंगिक और उपादेय हैं जितने कि पूर्वकाल में थे। ❖

संदर्भ :

1. अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवंत्यहिंसेति।
   तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेप।।
   —पुरुषार्थसिद्धयुपायः, श्लो. 44
2. माधवाचार्य, सर्वदर्शन संग्रह, पृ. 122 पर उद्धृत
3. तत्त्वार्थसूत्र

❖❖

घर–परिवार और मित्र–परिजनों के यहां खुशी के अवसरों पर 'जैन भारती' उपहार के रूप में एक वर्ष, तीन वर्ष या दस वर्ष तक भिजवाकर आप आध्यात्मिक–नैतिक मूल्यों के विकास में योगदान दे सकते हैं। जन्म–दिन का उपहार हो या कोई अन्य अवसर, 'जैन भारती' अनुपम उपहार के रूप में भेंट के लिए हमें लिखें। आपकी ओर से हम यह कार्य करेंगे।

जैन भारती एक संपूर्ण पत्रिका है।
वैचारिक उन्मेष और परिष्कृत रंजन के लिए
जैन भारती पढ़ें—सबको पढ़ाएं।

व्यवस्थापक
जैन भारती
जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा
तेरापंथ भवन, महावीर चौक
गंगाशहर, बीकानेर 334401

तेरापंथ धर्मसंघ का 141वां मर्यादा महोत्सव संपन्न

मर्यादापत्र है एक सुरक्षा छतरी, जिससे मिलता है आश्वास, विश्वास और शीतलता

संयम पर्याय के 75 वर्ष : श्रद्धा, ज्ञान और आचार की समन्विति

❑

जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा का 141वां मर्यादा महोत्सव श्रद्धा, सेवा, समर्पण और उत्साह के स्व-संकल्पों के साथ ऐतिहासिक भूमि लाडनूं (राजस्थान) में संपन्न हो गया। तेरापंथ धर्मसंघ के अधिष्ठाता आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के सान्निध्य में संपन्न हुए इस अधिवेशन में 104 साधु, 358 साध्वियां, दो समण और 103 समणियों सहित देश-भर से आए हजारों श्रावक-श्राविकाएं साक्षी बने। मर्यादा महोत्सव का मुख्य आयोजन माघ शुक्ला सप्तमी (15 फरवरी, 2005) को संपन्न हुआ। जबकि तीन दिन के माघ महोत्सव का शुभारंभ बसंत पंचमी के रोज ही शुरू हो गया था। लाडनूं में आचार्यवर के सान्निध्य में जहां मुख्य अधिवेशन हुआ, वहीं देश-भर में फैले तेरापंथ के श्रावक-श्राविकाओं ने अलग-अलग क्षेत्रों में विचरित साधु-साध्वियों के सान्निध्य में माघ महोत्सव आनंद के साथ मनाया।

तेरापंथ का यह मर्यादा महोत्सव पिछले 140 सालों से अनवरत इसी तरह से हर साल मनाया जाता है। मर्यादा-पत्र की प्रतिष्ठापना के साथ ही आचार्यप्रवर इस महोत्सव की घोषणा करते हैं। लाडनूं के 141वें मर्यादा महोत्सव का शुभारंभ भी आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की उद्घोषणा और मुनिश्री दिनेशकुमारजी के मर्यादागीत के संगान के साथ शुरू हुआ।

मर्यादा महोत्सव का पहला दिन बसंत पंचमी (13 फरवरी, 2005) संघ के साधु-साध्वियों के लिए गठित सेवाकेंद्रों की व्यवस्था और उन सेवाकेंद्रों में सेवा के लिए साधु-साध्वियों की नियुक्ति जैसे कामों की शुरुआत से होता है। साध्वी वर्ग की ओर से शासन-गौरव साध्वी राजीमतीजी और साधु वर्ग की ओर से अणुव्रत प्रभारी मुनि सुखलालजी ने सेवाकेंद्रों पर सेवा के लिए प्रार्थना की। साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी ने कहा कि तेरापंथ संघ में वृद्ध, रुग्ण और ग्लान साधु-साध्वियों की सेवा जिस निष्ठाभरे मनोभाव से की जाती है वह देखने वालों को अभिभूत करने वाली होती है। सेवा के ऐसे उदाहरण विरल हैं। साध्वीप्रमुखाजी ने कामना की कि सेवा-भावना का ऐसा रूप समाज के लिए भी अनुकरणीय बने।

युवाचार्यश्री महाश्रमणजी ने कहा कि तेरापंथ संघ में सेवा के प्रति सहज आकर्षण रहा है। यह आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ता रहे—यही अपेक्षा है। उन्होंने कहा—सेवा का आंतरिक रुझान बना रहे और संघ की प्रभावना बलवती हो—यही अपेक्षा है। उन्होंने सेवा को निर्जरा का अपूर्व साधन बताते हुए कहा कि सेवा से तीर्थंकरत्व की प्राप्ति भी हो सकती है।

इस मौके पर आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने महामंत्रोच्चार के साथ मर्यादापत्र की प्रतिष्ठापना करते हुए बताया कि आचार्य भिक्षु के हाथों से लिखा यह 'पत्र' मर्यादा महोत्सव का मूल आधार है। हमारे संघ के लिए यह एक सुरक्षा छतरी की तरह सदा विद्यमान है। इस मर्यादा पत्र से सकल संघ को आश्वास, विश्वास और शीतलता प्राप्त होती है। हमारे संघ के संचालन का बुनियादी आधार यही मर्यादापत्र है।

इस अवसर पर आचार्यवर ने लाडनूं के पावन और अनुकरणीय इतिहास, सेवाकेंद्रों की स्थापना और संघ के विस्तार पर समग्र रोशनी डाली और बताया कि सेवा की सुदृढ़ व्यवस्था के कारण ही तेरापंथ का हर साधु-साध्वी अपने भविष्य के प्रति आश्वस्त है। आचार्यवर ने कहा कि हम निर्जरा के लिए, आत्मशोधन के लिए सेवा करें। सेवा ही सबसे बड़ी मर्यादा है।

मर्यादा महोत्सव के पहले ही दिन गुरुदेवश्री तुलसी के जीवन से संबंधित संस्मरणों के चार खंड पुस्तक रूप में—'प्रेरणा पल दो पल की' का लोकार्पण हुआ। इसकी प्रथम प्रति साध्वीप्रमुखाजी ने आचार्यवर के करकमलों में उपहृत की।

शासन गौरव मुनि बुद्धमलजी द्वारा लिखा 'तेरापंथ का इतिहास' का चौथा खंड भी मुनि सुमेरमलजी सुदर्शन को भेंट किया। 'जैन आगम वाद्य कोष' की एक प्रति मुनि वीरेंद्रकुमारजी ने भेंट की। इसके प्रधान संपादक स्वयं आचार्यवर हैं जबकि संपादकीय दायित्व का निर्वहन मुनि वीरेंद्रकुमारजी और मुनि जयकुमारजी ने पूरा किया है।

मर्यादा महोत्सव के पहले ही रोज मुनि नीरजकुमारजी ने मधुर गीत प्रस्तुत किया। जैन श्वेतांबर तेरापंथी सभा बंगलौर के अध्यक्ष श्री हीरालाल मालू ने कन्नड़ में अनूदित दो पुस्तकें 'धर्म मुझे क्या देता है' व 'महावीर का अर्थशास्त्र' आचार्यवर को भेंट कीं। इन दोनों पुस्तकों के मूल लेखक आचार्यश्री महाप्रज्ञजी हैं।

इसी अवसर पर 'प्रेक्षाध्यान : स्व का साक्षात्कार' और 'हे प्रभो! यह तेरापंथ' नामक लघु फिल्मों की सीडी का लोकार्पण हुआ। पंजाब सरकार के सहायक महाधिवक्ता श्री पी. डी. सिंघला, श्री लक्ष्मी मित्तल और फिल्म निर्माता सुनील बब्बर भी उपस्थित थे।

पहले रोज के कार्यक्रम में श्री जतनलाल सेठिया को शासन सेवा पुरस्कार प्रदान किया गया। मदनचंद तोलाराम गोठी चेरिटेबल ट्रस्ट की ओर से ट्रस्टी श्री सुमति गोठी ने अपने विचार प्रकट किए। श्री कन्हैयालाल छाजेड़ ने इस शासन सेवा पुरस्कार के बारे में जानकारी दी। इसी अवसर पर तेरापंथ विकास परिषद के बारे में श्री मांगीलाल सेठिया ने जानकारी दी। श्री संजय खटेड़ ने 'तेरापंथ टाइम्स' का ताजा अंक भेंट किया।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने श्री जतनलाल सेठिया और इनकी धर्मपत्नी श्रीमती सरोजदेवी की सहयोग भावना और त्याग-संयम का उल्लेख करते हुए कहा कि इन दोनों में शासन के प्रति प्रबल भावना है।

इस प्रकार मर्यादा महोत्सव का प्रथम दिवस एक महत्त्वपूर्ण यादगार दिवस के रूप में उपस्थितजनों के मनों में अपनी छाप छोड़ गया।

दूसरा दिन : आचार्य पदाभिरोहण समारोह

मर्यादा महोत्सव का दूसरा दिन माघ शुक्ला षष्टमी (14 फरवरी, 2005) तेरापंथ के वर्तमान अधिष्ठाता के पदारोहण का पावन दिवस। आज ही के रोज आचार्यश्री महाप्रज्ञजी को इस पद पर आरूढ़ किया गया। इसीलिए इस रोज प्रातः चार बजे से ही आचार्य महाप्रज्ञजी के प्रति श्रद्धा प्रकट करने का तांता-सा लग गया। सूर्योदय के साथ ही साध्वीप्रमुखाजी अपने पूरे साध्वी समाज के साथ आचार्यवर की अभिवंदना में पहुंचीं। आचार्यवर और युवाचार्यश्री को नया रजोहरण और नई प्रमार्जनी उपहृत की। चतुर्विध संघ ने 'वन्दे गुरुवरम्' के गगनगुंजित निनाद के साथ वर्धापना की। साधु-साध्वीवृंद और समणियों ने समूह गान से समूचे वातावरण को मधुर संगीत से सराबोर कर डाला।

यह तो हुआ प्रातःकालीन समय में सहज श्रद्धा-अभिव्यक्ति का कार्यक्रम। आचार्य पदाभिरोहण कार्यक्रम विधिवत रूप से दोपहर सवा बारह बजे शुरू हुआ। युवाचार्यश्री महाश्रमणजी ने महामंत्रोच्चार के साथ इस कार्यक्रम का शुभारंभ किया। समणीवृंद ने 'महाप्रज्ञ अष्टकम्' का संगान किया। तेरापंथ महिला मंडल, लाडनूं ने वर्धापना गीत प्रस्तुत किया। साध्वी कमलश्रीजी आदि ने टमकोर की ओर से आचार्यवर का वर्धापन किया। टमकोर आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की जन्मस्थली है। श्रीमती सीमा भूतोड़िया ने मातुश्री बालूजी का चित्र आचार्यश्री को भेंट किया। जैन विश्वभारती के अध्यक्ष श्री सिद्धराज भंडारी और महासभा के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री सुरेंद्र चौरड़िया ने भी अपनी भावाभिव्यक्ति प्रस्तुत की।

चाड़वास में, पूर्व में, संपन्न हुए मर्यादा महोत्सव के अवसर पर गुरुदेव तुलसी की ओर से प्रेषित एक संदेश का स्मरण इस मौके पर यादगार घटना रही। श्री पन्नालाल बैद ने वही ऐतिहासिक संदेश आचार्यवर को भेंट किया। बाल-साध्वी तन्मयप्रभाजी, बालमुनि नयकुमारजी, मुनि मुदितकुमारजी, मुनि कुमुदकुमारजी, मुनि संभवकुमारजी, मुनि दीपकुमारजी, मुनि अक्षयकुमारजी सहित साध्वी स्मित प्रज्ञाजी, साध्वी निर्मलप्रभाजी, साध्वी मलययशाजी आदि ने अपनी-अपनी रचनाओं के माध्यम से आचार्यवर की अभ्यर्थना की। मुनि पीयूषकुमारजी और मुनि सुबोधकुमारजी तथा साध्वी मंगलयशाजी ने सुमधुर गीत का संगान किया। समणी कुसुमप्रज्ञाजी, समणी मंगलप्रज्ञाजी, समणी ज्योतिप्रज्ञाजी ने प्रकाशित कृतियां भेंट कीं।

पदाभिरोहण के इस पावन और मंगल अवसर पर मुनि किसनलालजी, मुनि यशवंतकुमारजी, मुनि देवेंद्रकुमारजी, मुनि आनंदकुमारजी, मुनि स्वस्तिककुमारजी और समण अश्विनप्रज्ञजी ने भी श्रद्धासिक्त उद्गार प्रकट किए। शासन-गौरव साध्वी राजीमतीजी व साध्वी यशोधराजी ने भी भावाभिव्यक्ति प्रस्तुत की।

इस अवसर पर साध्वी पीयूषप्रभाजी और साध्वी लावण्यप्रभाजी ने अपने शोधग्रंथ आचार्यवर को अर्पित किए, वहीं श्री मेघराज खटेड़ ने 'भारतीय समाज' का ताजा अंक भेंट किया।

अवसर-विशेष पर तेरापंथी सभा, लाडनूं के अध्यक्ष श्री रणजीतसिंह बैद सहित सर्वश्री हुलासचन्द गोलछा, मोहनभाई जैन, कन्हैयालाल छाजेड़, श्रीमती मधु जैन आदि ने भी अपनी भावनाएं प्रकट कीं। साधु-साध्वीवृंद और समणीगणों के सामूहिक गीतों की स्वर लहरियों से संपूर्ण 'सुधर्मा समवसरण' झंकृत हो उठा। श्री कमल सेठिया के सुमधुर गीत से भी सभी जन मंत्रमुग्ध हो गए।

इस अवसर पर साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी ने आठ तरह के मोतियों का उल्लेख करते हुए आठवें मोती—मेघ मोती—का जिक्र किया और कहा कि आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का आभामंडल उसी मेघ मोती की आभा से प्रदीप्त हो रहा है।

युवाचार्यश्री महाश्रमणजी ने अपनी श्रद्धा प्रकट करते हुए कामना की कि प्रशास्ता, अनुशास्ता और गुरु के रूप में लंबे समय तक आपका साया हमारे सिर पर रहे और इसी मंगल साये में हम संघ की सेवा करते रहें—बस, यही अभीप्सा है।

अलग-अलग रूपों में प्रस्तुत हुई भावाभिव्यक्तियों के प्रत्युत्तर में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने अपने मंगल उद्‌बोधन में बड़े ही सहज भाव के साथ अपने विचार प्रकट किए। उन्होंने कहा कि 'इतना जो कहा गया, उसे कहां रखूं!'

आचार्यवर ने कहा कि हमारा पहला कार्य अपनी योग्यता का विकास करना होना चाहिए, पात्रता विकसित हो, हम योग्य बनें—मेरे जीवन का यही एक मंत्र रहा और यही मंत्र सबका मंत्र बने—यह अपेक्षा है। उन्होंने कहा कि आज योग्यताशून्य महत्त्वाकांक्षा एक समस्या बन रही है। तेरापंथ धर्मसंघ ऐसा विनीत संगठन है जिसमें हर साधु आचार्य बनने की अर्हता रखता है पर कोई भी आचार्य बनने की आकांक्षा नहीं रखता। इस संघ में ऐसे संस्कार प्रखर सुदृढ़ता लिए हुए हैं। उन्होंने कहा—मैं संपूर्ण मानव जाति के लिए कार्य करता रहूं—यही प्रबल भावना है।

इस प्रकार मर्यादा महोत्सव का दूसरा दिन नए विश्वास और संकल्पों के साथ संपन्न हुआ।

मुख्य कार्यक्रम : मर्यादा का महा उत्सव

माघ शुक्ला सप्तमी, 15 फरवरी, 2005—मर्यादा महोत्सव का मुख्य आयोजन। महामंत्रोच्चार के बाद समणी वृंद ने 'भिक्षु अष्टकम्' का संगान किया और मुनि दिनेशकुमारजी के मर्यादाघोष और मर्यादागीत के साथ ही मर्यादा महोत्सव का मुख्य कार्यक्रम शुरू हुआ। आचार्यवर ने इसे मर्यादा का महा उत्सव बताया।

जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा के अध्यक्ष श्री सुरेंद्र चौरड़िया और श्री पन्नालाल बैद ने चाड़वास में हुए 133वें मर्यादा महोत्सव (सन् 1997) के समय गुरुदेवश्री तुलसी की ओर से प्रेषित संदेश आचार्यश्री महाप्रज्ञजी को एक बार पुनः भेंट कर उस समय की परिस्थितियों को तरोताजा कर दिया।

इस अवसर पर मुनि महेंद्रकुमारजी, मुनि लोकप्रकाशजी, मुनि कुमारश्रमणजी और साध्वी संघप्रभाजी ने अपने ओजस्वी विचार प्रस्तुत किए। मुनिवृंद, समणीवृंद और मुमुक्षु बहिनों ने सुमधुर गीत प्रस्तुत किए। मुनि रजनीश कुमारजी ने अपनी कृति 'रहस्य भिक्षु के' आचार्यवर और युवाचार्यश्री को अर्पित की और एक गीत का संगान भी किया। इसी कड़ी में मुनि महावीरकुमारजी, मुनि मननकुमारजी और मुनि नयकुमारजी ने गीतों के माध्यम से भावाभिव्यक्ति दी। प्रवास व्यवस्था समिति के अध्यक्ष श्री सार्दूलसिंह भुतोड़िया और जैन विश्वभारती के मंत्री श्री नरेंद्र छाजेड़ ने भी श्रद्धापूर्ण विचार प्रस्तुत किए।

इस अवसर पर गुरुदेवश्री तुलसी के प्रवचनों के 21 खंडों में संपादित ग्रंथ 'प्रवचन पाथेय' आचार्यवर को भेंट किया गया। इनका संपादन मुनि धर्मरुचिजी ने किया और इस कार्य को गुरुकृपा का प्रसाद बताया। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने मुनि धर्मरुचिजी के इस कार्य को निष्ठा और लगन से किया हुआ उल्लेखनीय कार्य माना। पुस्तकों का सैट श्री पन्नालाल मनोज लूणिया ने पूज्यवरों को भेंट किया और साध्वीप्रमुखाजी को यह सैट फूलदेवी कंचनदेवी लूणिया ने भेंट किया।

मुनिश्री धनंजयकुमारजी ने आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की दो कृतियां 'अनुशासन संहिता' तथा 'तत्त्वसंहिता' अर्पित कीं। श्री विमल नाहटा ने 'तत्त्व संहिता' और 'अष्टमक कैलेंडर' भेंट किए। मुनि सुमेरमलजी 'लाडनूं' की ओर से संपादित 'तेरापंथ दिग्दर्शन' व मित्र परिषद की ओर से प्रकाशित तिथिपत्रक भेंट किया गया।

मर्यादा महोत्सव के महत्त्व पर अपने विचार प्रकट करते हुए साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी ने कहा कि अनुशासन, विनय, समर्पण और एक गुरु के प्रति आस्था ने ही इस संघ को चिरजीवी बनाया है। हमें पहले से अधिक संकल्पित बनकर संघ की अधिक-से-अधिक सेवा और अपनी शक्ति का नियोजन करना है। उन्होंने अपनी समीक्षा करने का भी आह्वान किया।

युवाचार्यश्री महाश्रमणजी ने जैन वाङ्मय के एक सूत्र—'छंदं निरोहेण उवेइ मोक्खं'—जो दुखों से मुक्ति प्राप्त करना चाहता है, उसे अपनी स्वच्छंदता पर नियंत्रण रखना चाहिए—का उल्लेख किया। उन्होंने कहा कि जिसमें नियंत्रण की शक्ति होती है वही संघ और व्यक्ति विकास कर सकता है। तेरापंथ धर्मसंघ में अनुशासन और मर्यादा का सदैव महत्त्व रहा है। युवाचार्यश्री ने माना कि श्रावक समाज की जागरूकता संघ के विकास में सहायक बनती है।

मर्यादा महोत्सव के मुख्य आयोजन का सबसे बड़ा आकर्षण आचार्यवर का उद्बोधन और श्वेत धवलवाहिनी का पंक्तिबद्ध होकर मर्यादापत्र का वाचन होता है, इसे बड़ी हाजरी भी कहा जाता है। उपस्थित जनमेदिनी को संबोधित करते हुए आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने मर्यादा और व्यवस्था को संगठन का प्राणतत्त्व बताते हुए इस आयोजन को मर्यादा का महा उत्सव माना। उन्होंने कहा कि जहां मर्यादा, विधि-निषेध और व्यवस्था नहीं होती, वह संगठन निष्प्राण होता है।

आचार्य महाप्रज्ञजी ने सामुदायिक चेतना के विकास, अनुशासन और व्यवस्था को आवश्यक तत्त्व बताते हुए इसके बाधक तत्त्वों की ओर इंगित किया। सामुदायिक चेतना के विकास में बाधक तत्त्वों का खुलासा करते हुए अहंकार, व्यक्तिगत स्वार्थ और दूरदर्शी चिंतन के अभाव से मुक्त होने की जरूरत बताई।

आचार्य महाप्रज्ञजी ने आह्वान किया कि संघ के हर सदस्य का यह प्रयास रहना चाहिए कि हमारा संगठन उत्तरोत्तर मजबूत हो और इसकी प्रभावना में अपनी शक्ति व श्रम का नियोजन करते रहें।

आचार्यवर ने अवसर-विशेष पर रचित गीत का संगान भी किया और इसके साथ ही सभी साधु-साध्वियों ने पंक्तिबद्ध खड़े होकर मर्यादाओं का पुनरुच्चार और प्रत्याख्यान किया। इस श्वेत धवलवाहिनी को कतारबद्ध देखना सभी उपस्थितों के लिए अनूठे अनुभव से गुजरने जैसा लगा।

मर्यादा महोत्सव के तीन दिनों के सभी कार्यक्रमों का संयोजन-संचालन मुनि मोहजीतकुमारजी ने किया।

संयम पर्याय के 75 वर्ष : श्रद्धा, ज्ञान और आचार की समन्विति का जीवन

मर्यादा महोत्सव का तीन दिन का कार्यक्रम यद्यपि 15 फरवरी को संपन्न हो गया, लेकिन इसी शृंखला में 18 फरवरी को आचार्य महाप्रज्ञजी के संयम पर्याय के 75 वर्ष पूरे होने पर हुआ कार्यक्रम इसी कड़ी का एक हिस्सा माना गया और जैन विश्वभारती, लाडनूं के लिए भी यह अवसर एक ऐतिहासिक घटना के रूप में अंकित हो गया।

माघ शुक्ला दशमी का दिन आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का दीक्षा दिवस है, जो युवा दिवस के रूप में भी मान्य है। इस बार संयम के 75 वर्ष पूर्ण होने पर यह दिवस अनूठी विशिष्टता लिए हुए था। इस मौके पर महामहिम राष्ट्रपति ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ने जो मर्मस्पर्शी भावाभिव्यक्ति आचार्यवर को संप्रेषित की, वह एक अविस्मरणीय भावाभिव्यक्ति मानी गई। राष्ट्रपतिजी ने अपने निजी-मित्र और देश के जाने-माने वैज्ञानिक डॉ. वाई. एस. राजन के साथ यह लिखित भावांजलि भेजी। उन्होंने अपने भाव सुमनों में सन् 1999 में आचार्य महाप्रज्ञजी से हुई मुलाकात का जिक्र किया और उस समय जो वार्तालाप हुआ, उसका स्मरण करते हुए कहा कि वह दिव्य संदेश उनके हृदय में आज भी गूंज रहा है। राष्ट्रपतिजी ने अपनी उस भावाभिव्यक्ति में सन् 1999 में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के साथ हुए संवाद को इस तरह स्मरण किया—'कलाम! आपने अपनी टीम के साथ मिलकर जो कार्य किया, उसके लिए ईश्वर आपको आशीर्वाद देंगे। सर्वशक्तिमान ईश्वर ने आपको एक बड़ा मिशन सौंपा है, इसीलिए आप आज मुझसे मिले हैं। मैं जानता हूं कि अब हमारा देश एक परमाणु शक्तिसंपन्न राष्ट्र है। आपने और आपकी टीम ने जो कार्य किया, यह उससे भी बड़ा मिशन है। विश्व में परमाणु अस्त्रों की संख्या बढ़ती जा रही है। मैं आपको, केवल आपको ही इन अस्त्रों को निष्प्रभावी, निरर्थक और राजनीतिक रूप से महत्त्वहीन बनाने का समाधान ढूंढ़ने के लिए समस्त दिव्य आशीर्वादों सहित आदेश देता हूं।' यह भावना आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने उस समय प्रकट की थी। संपूर्ण भावाभिव्यक्ति के हिंदी पाठांतर का वाचन साध्वी

विश्रुतविभाजी ने किया। डॉ. वाई. एस. राजन् ने भी अपने श्रद्धासिक्त विचार प्रकट किए। केंद्रीय गृहमंत्री श्री शिवराज पाटिल के पत्र का वाचन श्रीमती सुधामही रघुनाथन ने किया। इस अवसर पर मुनिश्री लोकप्रकाशजी और डॉ. वाई. एस. राजन ने राष्ट्रपतिजी से संदर्भित बिंदुओं पर प्रकाश डाला।

संयम पर्याय के 75 वर्ष पूरे होने के उपलक्ष में एक अनूठा कार्यक्रम साध्वीवृंद की ओर से प्रस्तुत हुआ। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के शासनकाल में दीक्षित हुई साध्वी सुनंदाश्री सहित 75 साध्वियों ने आचार्यवर की अभ्यर्थना में भावपूर्ण गीत प्रस्तुत किया। इसी कड़ी में स्थानीय तेरापंथ महिला मंडल की ओर से 75 संकल्प-पत्र आचार्यवर को उपहृत किए गए।

अखिल भारतीय तेरापंथी महिला मंडल, अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद और मित्र परिषद की ओर से अभिनंदन पत्र भेंट किए गए।

जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा के अध्यक्ष श्री सुरेंद्र चौरड़िया ने समग्र समाज की ओर से अभिवंदना प्रस्तुत की और एक विरल ऐतिहासिक कृति आचार्यवर को उपहृत की, जिसका वजन लगभग डेढ़ क्विंटल माना गया। कई धातुओं से निर्मित इस कृति में आचार्यवर का भव्य 'बस्ट', जीवन की प्रमुख घटनाओं के रेखांकन आदि अंकित हैं। इसका निर्माण कुशल चितेरे व मूर्तिकार श्री रामकिशन 'अडिग' ने किया। आचार्यश्री के प्रति समग्र समाज की ओर से अभिवंदना इन शब्दों में प्रकट हुई—

इस मुनित्व को विनम्र प्रणाम, अभिवन्दन/इस मुनित्व में निहित है व्यक्ति की स्वतन्त्रता, महिमा और गरिमा/ मानव-रत्न का निष्काम, निर्लिप्त और निर्भीक रक्षक सिद्ध हुआ है यही मुनित्व/धर्म, संस्कृति और दर्शन के गहन अध्ययन, अन्वेषण से निःसृत/अध्यात्म और विज्ञान रूपी नवनीत इस मुनित्व का अनुपम अवदान है/मानव जीवन के कल्याण, उन्नयन व शान्ति के लिए/यह मुनित्व अनासक्त योगी और अविराम यात्री की मानिन्द अनवरत अग्रसर है/ हे मुनित्व! आत्मा की अनन्तता व शाश्वतता की तरह/ आपका वरदहस्त हम पर सदा-सदा रहे—यही कामना/ शतशः नमन!

अवसर-विशेष पर साध्वी मुदितयशा, समणी कुसुमप्रज्ञा आदि ने अपने विचार प्रकट किए। मुनि धनंजयकुमारजी ने आचार्यवर द्वारा रचित कृति 'तुलसी यशो विलास' का पहला खंड पूज्यवरों को भेंट किया। साध्वी विश्रुतविभाजी ने महाश्रमणीजी को यह कृति भेंट की।

इस अवसर पर आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के अत्यंत भावपूर्ण चित्र और उन्हीं का 'स्व-कथन' एक सुंदर पोस्टर की शक्ल में मंडित कर आचार्यवर को उपहृत किया गया। यह अपेक्षा रही कि यह पोस्टर कृति तेरापंथ से संबद्ध सभी प्रमुख स्थलों पर स्थाई रूप से लगाया जाना चाहिए। आचार्यवर का स्वकथन न केवल मर्मस्पर्शी है, इसका एक-एक शब्द हर व्यक्ति को स्वयं के बारे में, समाज के बारे में, राष्ट्र के बारे में और संपूर्ण मानव जाति के बारे में सोचने को विवश करता है। आचार्यवर का यह स्वकथन जैन भारती के फरवरी, 2003 के अंक में प्रकाशित है, पाठकगण इसका अवलोकन कर सकते हैं।

अवसर-विशेष पर आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने कहा कि—आज के दिन मैं यह कहना चाहूंगा कि जिसे शांतिपूर्ण और सार्थक जीवन जीना है उसे श्रद्धा, ज्ञान और आचार की समन्विति का जीवन जीना चाहिए। मैं अपना सबसे बड़ा सौभाग्य मानता हूं कि एक सक्षम और अनुशासित धर्मसंघ मुझे मिला। उन्होंने कहा कि पूज्य कालूगणी के करकमलों का स्पर्श और मुनि तुलसी के योग से अव्यक्त को व्यक्त करने का बड़ा अवसर मिल गया।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के इस कथन में गहरी कृतज्ञता और अनूठी श्रद्धा प्रस्फुटित हो रही थी, जब उन्होंने कहा—'मैंने पहले मुनि तुलसी और बाद में गुरु तुलसी से जो ज्ञान अर्जित किया वह केवल पुस्तकीय ज्ञान ही नहीं था, जीवन का बोधपाठ था और जीवन का पाठ पढ़ाने वाले विरले ही होते हैं। उन्होंने कहा कि मैंने अपने लिए तीन सूत्र निर्धारित किए—पवित्रता, गतिशीलता और उपयोगिता। मेरे जीवन में ये तीनों सूत्र विकसित होते चले गए। जिसमें पवित्रता है, जो रूढ़ न होकर गतिशील रहता है और जो दूसरों के लिए उपयोगी होता है, वही व्यक्ति अपने जीवन को सार्थक बना सकता है। .

इस प्रकार मर्यादा महोत्सव के त्रिदिवसीय कार्यक्रम और संयम पर्याय के 75वें वर्ष पर श्रद्धा से भरे अभिवंदना के इस कार्यक्रम ने इस बार के माघ महोत्सव को अविस्मरणीय बना दिया।

प्रस्तुति :

भवानी सोलंकी

अनुभूति

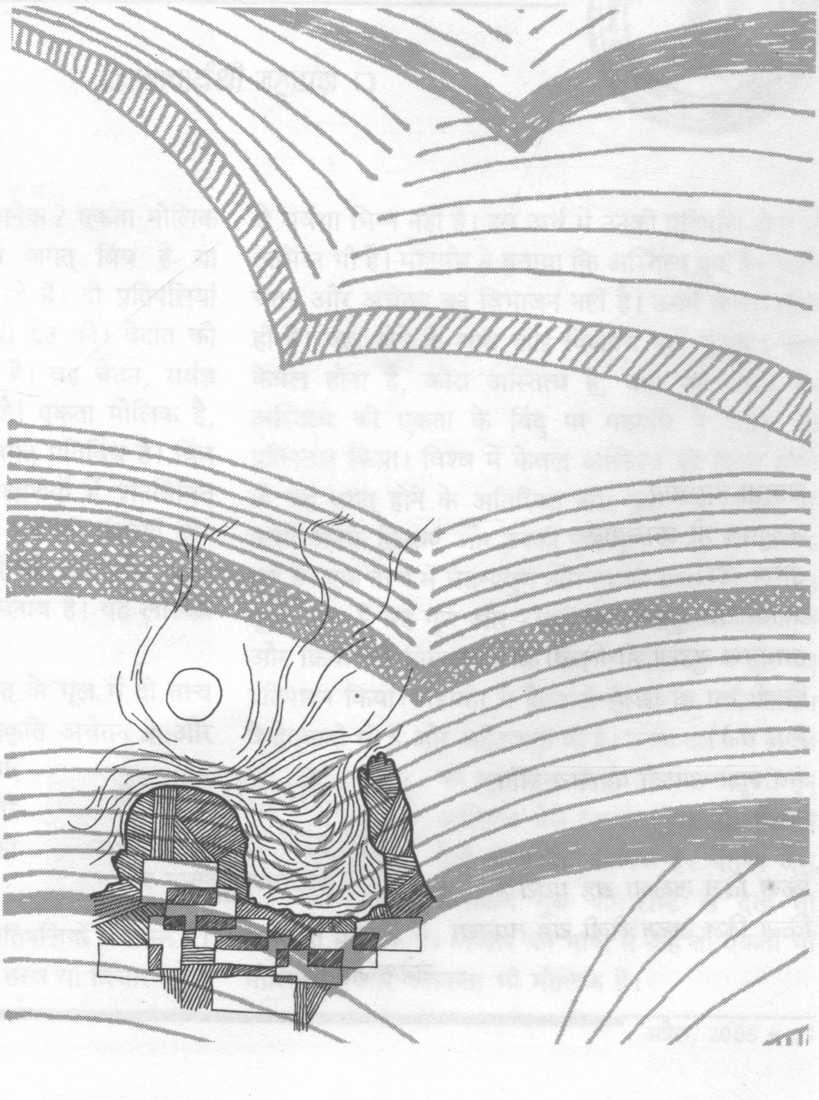

चाहता हर बार
उन्मुक्त हो घर-द्वार
अंतर का।
प्रशस्त हो मुझमें हवा
आकाश मुझमें ही लिखा हो
किसी का हो अश्रु—
मेरा बने।
सब मुझे अपनी पराजय सौंप
सुखी हो जाएं।

किस दिन जगेगा यह पुण्य?
किस दिन जन्म लेगी यह तपस्या

—**नरेश मेहता**

मैत्री, अभय और सहिष्णुता—इन तीन आयामों से समता का विकास होता है। जिस व्यक्ति में प्रतिकूल परिस्थिति को सहन करने की क्षमता जाग्रत नहीं होती, वह अभय नहीं हो सकता और भयभीत मनुष्य में मैत्री का विकास नहीं हो सकता। जिसमें अनुकूल परिस्थिति को सहन करने की क्षमता जाग्रत नहीं होती, वह गर्व से उन्मत्त होकर दूसरों में भय और अमैत्री का संचार करता है। तीनों आयामों में विकास करने पर ही समता स्थाई होती है। समता एक आयाम में विकसित नहीं होती। हम किसी व्यक्ति को मैत्री के आयाम में अधिक गतिशील देखते हैं, किसी को अभय के आयाम में और किसी को सहिष्णुता के आयाम में। इनमें से एक के होने पर शेष दो का होना अनिवार्य है। समता के होने पर इन तीनों का होना अनिवार्य है। इन तीनों का होना ही वास्तव में समता का होना है

❑ समता-विकास के त्रिआयाम ❑

❑ आचार्यश्री महाप्रज्ञ ❑

जगत् का मूल एक है या अनेक? एकता मौलिक है या अनेकता? दृश्य जगत् बिंब है या प्रतिबिंब? ये प्रश्न निरंतर चर्चा में रहे हैं। दो प्रतिपत्तियां मुख्य हैं—एक अद्वैत की और दूसरी द्वैत की। वेदांत की प्रतिपत्ति है कि जगत् का मूल एक है। वह चेतन, सर्वज्ञ और सर्वेश्वर है। उसकी संज्ञा ब्रह्म है। एकता मौलिक है, अनेकता उसका विस्तार है। हमारा जगत् प्रतिबिंब है। बिंब एक ब्रह्म ही है। एक सूर्य हजारों जलाशयों में प्रतिबिंबित होकर हजार बन जाता है। प्रातःकाल सूर्य की रश्मियां दूर-दूर फैलती हैं, सांझ के समय वे सूर्य की ओर लौट जाती हैं। यह जगत् ब्रह्म की रश्मियों का फैलाव है। यह लौटकर उसी में विलीन हो जाता है।

सांख्य की प्रतिपत्ति है कि जगत् के मूल में दो तत्त्व हैं—प्रकृति और पुरुष (आत्मा)। प्रकृति अचेतन है और पुरुष चेतन। पुरुष अनेक हैं, इसीलिए एकता मौलिक नहीं है। चेतन और अचेतन में बिंब और प्रतिबिंब का संबंध नहीं है।

श्रमण महावीर
जन्म जयंती विशेष
चैत्र शुक्ला त्रयोदशी

महावीर की प्रतिपत्ति इन दोनों प्रतिपत्तियों से भिन्न है। उनका दर्शन है कि विश्व का कोई भी तत्त्व या विचार दूसरों से सर्वथा भिन्न नहीं है। इस अर्थ में उनकी प्रतिपत्ति दोनों से अभिन्न भी है। महावीर ने बताया कि अस्तित्व एक है। उसमें चेतन और अचेतन का विभाजन नहीं है। उसमें केवल होना ही है। वहां होने के साथ कोई विशेषण नहीं जुड़ता। जहां केवल होना है, कोरा अस्तित्व है, वहां पूर्ण अद्वैत है। अस्तित्व की एकता के बिंदु पर महावीर ने अद्वैत का प्रतिपादन किया। विश्व में केवल अस्तित्व की क्रिया होती तो यह जगत् होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। पर उसमें अनेक क्रियाएं और उनकी पृष्ठभूमि में रहे हुए अनेक गुण हैं। एक तत्त्व में चैतन्यगुण और उसकी क्रिया मिलती है। दूसरे तत्त्व में वह गुण और उसकी क्रिया नहीं मिलती। गुण और क्रिया की विलक्षणता के बिंदु पर महावीर ने द्वैत का प्रतिपादन किया। महावीर न द्वैतवादी हैं और न अद्वैतवादी। वे द्वैतवादी भी हैं और अद्वैतवादी भी हैं। उनके दर्शन में विश्व का मूल एक भी है और अनेक भी है। अस्तित्व जैसे व्यापक गुण की दृष्टि से देखें तो एकता मौलिक है। चैतन्य जैसे विलक्षण गुण की दृष्टि से देखें तो अनेकता मौलिक है। निष्कर्ष की भाषा में कहें तो एकता भी मौलिक है और अनेकता भी मौलिक है।

महावीर के दर्शन में अनंत परमाणु हैं और अनंत आत्माएं। प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक आत्मा बिंब है। हर बिंब का अपना-अपना प्रतिबिंब है। गुण का स्थाई भाव बिंब है और उसकी गतिशीलता प्रतिबिंब है।

महावीर ने इस दर्शन की भूमि में अपनी साधना का बीज बोया। अचेतन के सामने साधना का कोई प्रश्न नहीं है। उसका होना और गतिशील होना—दोनों प्राकृतिक नियम से जुड़े हुए हैं, किंतु उसकी गतिशीलता प्राकृतिक नियम से संचालित नहीं होती। वह ज्ञानपूर्वक बदलता है—जो होना चाहता है उस दिशा में प्रयाण करता है। यही है उसकी साधना। मनुष्य का ज्ञान विकसित होता है, इसलिए वह विकास के चरम बिंदु पर पहुंचना चाहता है। उसके सामने चेतना की दो भूमिकाएं हैं—एक द्वंद्व की और दूसरी है द्वंद्वातीत। जीवन और मृत्यु, सुख और दुख, मान और अपमान, हर्ष और विषाद जैसे असंख्य द्वंद्व हैं। ये मन पर आघात करते रहते हैं। उससे मन का संतुलन बिगड़ जाता है। वह विषम हो जाता है।

द्वंद्व के आघात से बचने के लिए महावीर ने समता की साधना प्रस्तुत की। उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म का नाम है—समता धर्म, सामायिक धर्म। इसके दो अर्थ हैं—
1. प्राणी-प्राणी के बीच में समता की खोज और अनुभूति।
2. द्वंद्वों के दोनों तटों के बीच में मानसिक समता के पुल का निर्माण।

मैत्री, अभय और सहिष्णुता—इन तीन आयामों से समता का विकास होता है। जिस व्यक्ति में प्रतिकूल परिस्थिति को सहन करने की क्षमता जाग्रत नहीं होती, वह अभय नहीं हो सकता और भयभीत मनुष्य में मैत्री का विकास नहीं हो सकता। जिसमें अनुकूल परिस्थिति को सहन करने की क्षमता जाग्रत नहीं होती, वह गर्व से उन्मत्त होकर दूसरों में भय और अमैत्री का संचार करता है। तीनों आयामों में विकास करने पर ही समता स्थाई होती है। समता एक आयाम में विकसित नहीं होती। हम किसी व्यक्ति को मैत्री के आयाम में अधिक गतिशील देखते हैं, किसी को अभय के आयाम में और किसी को सहिष्णुता के आयाम में। इनमें से एक के होने पर शेष दो का होना अनिवार्य है। समता के होने पर इन तीनों का होना अनिवार्य है। इन तीनों का होना ही वास्तव में समता का होना है।

मैत्री का आयाम

कालसौकरिक[1] राजगृह का सबसे बड़ा कसाई था। उसके कसाईखाने में प्रतिदिन सैकड़ों भैंसे मारे जाते थे। एक दिन सम्राट श्रेणिक ने कहा, 'कालसौकरिक! तुम भैंसों को मारना छोड़ दो। मैं तुम्हें प्रचुर धन दूंगा।'

कालसौकरिक को सम्राट का प्रस्ताव पसंद नहीं आया। भैंसों को मारना अब उसका धंधा ही नहीं रहा, वह एक संस्कार बन गया। उन्हें मारे बिना कालसौकरिक को दिन सूना-सूना-सा लगता। उसने सम्राट के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। सम्राट ने इसे अपना अनादर मान कालसौकरिक को अंधकूप में डलवा दिया। पूरे एक दिन व रात उसे वहीं रखा।

श्रेणिक ने भगवान महावीर से निवेदन किया—'भंते! मैंने कालसौकरिक से भैंसे मारने छुड़वा दिए हैं।'

'श्रेणिक! यह संभव नहीं है।' महावीर ने प्रतिक्रिया की।

'भंते! वह अंधकूप में पड़ा है। वह भैंसों को कहां से मारेगा?'

'उसका हृदय-परिवर्तन नहीं हुआ है, फिर वह अपने प्रगाढ़ संस्कार को दंड-बल से कैसे छोड़ सकेगा?' भगवान का उत्तर था।

'तो क्या भगवान यह कहते हैं कि उसने अंधकूप में भी भैंसों को मारा है?'

'हां, मेरा आशय यही है।'

'भंते! यह कैसे संभव है?' श्रेणिक का प्रश्न था।

'क्या उस अंधकूप में गीली मिट्टी नहीं है?'

'वह तो है, भंते!'

'उस मिट्टी का भैंसा नहीं बनाया जा सकता?' महावीर ने कहा।

'भंते! बनाया जा सकता है।'

'इसलिए मैं कहता हूं कि कालसौकरिक दिन-भर भैंसों को मारता रहा है।'

दंड-बल से हिंसा नहीं छुड़ाई जा सकती—सम्राट इस सत्य को समझ गया। वह हृदय-परिवर्तन से ही छूटती है। सम्राट ने अंधकूप के पास जाकर मरे हुए भैंसों को देखा और देखा कि कालसौकरिक के क्रूर हाथ अब भी उन्हें मारने में लगे हुए हैं। सम्राट ने उसे मुक्त कर दिया। कुछ वर्षों बाद कालसौकरिक मर गया। कोई भी प्राणी अमर नहीं होता। एक दिन मारने वाला भी मर जाता है। लोगों ने सुना, कालसौकरिक मर गया।

कालसौकरिक का पुत्र था—सुलस। परिवार के लोगों ने उससे पिता का काम संभालने को कहा। सुलस ने उसे ठुकरा दिया। 'मैं कसाई का धंधा नहीं कर सकता।' उसने स्पष्ट शब्दों में अपनी भावना प्रकट कर दी।

परिवार के लोग बड़े असमंजस में पड़ गए। सारा काम ठप्प हो गया। उन्होंने फिर कहा-किया। सुलस ने विनम्र शब्दों में कहा—'जैसे मेरे प्राण मुझे प्रिय हैं, वैसे ही दूसरों को भी अपने प्राण प्रिय हैं। फिर मैं अपने प्राणों की रक्षा के लिए दूसरों के प्राण कैसे ले सकता हूं?'

स्वजन-वर्ग ने प्राणी-हिंसा में होने वाले पाप के विभाजन का आश्वासन दिया। उन्होंने एक भैंसे को मारकर कार्य प्रारंभ करने का अनुरोध किया। सुलस ने अपने पिता के कुठार को हाथ में उठाया। स्वजन-वर्ग हर्ष से झूम उठा। सुलस ने सामने खड़े भैंसे को करुणापूर्ण दृष्टि से देखा और कुठार अपनी जंघा पर चलाया। वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। जंघा से रक्त की धार बह चली। थोड़ी देर बाद वह सचेत हुआ और करुणापूर्ण स्वर में बोला—'बंधुओ! यह घाव मुझे पीड़ित कर रहा है। कृपया आप मेरी पीड़ा को बंटाएं, जिससे मेरी पीड़ा कम हो।' स्वजन-वर्ग ने खिन्न मन से कहा—'यह कैसे हो सकता है? पीड़ा को कैसे बांटा जा सकता है?' सुलस बोल उठा—'आप लोग मेरी पीड़ा का विभाग भी नहीं ले सकते, तब मेरे पाप का विभाग कैसे ले सकेंगे? मैं इस हिंसा को नहीं चला सकता, भले फिर यह पैतृकी हो। क्या यह आवश्यक है कि पिता अंधा हो तो पुत्र भी अंधा होना चाहिए?'

अभय का आयाम

अर्जुन मालाकार बड़ी तत्परता से अपनी पुष्पवाटिका में पुष्प चुन रहा था। बंधुमती छाया की भांति उसके पीछे चल रही थी। उसका मन बहुत उत्फुल्ल था। राजगृह के कण-कण में उत्सव अठखेलियां कर रहा था। हर नागरिक सुरभि-पुष्पों के लिए लालायित हो रहा था। 'आज पुष्पों का विक्रय प्रचुर मात्रा में होगा'—इस कल्पना ने अर्जुन के हाथों और पैरों में होड़ उत्पन्न कर दी। थोड़े समय में ही चारों करंडक पुष्पों से भर गए। मालाकार-दंपती पुलकित हो उठा।

पुष्पवाटिका में पुष्प चुनकर अर्जुन यक्ष की पूजा करने जाया करता था। मुद्गरपाणि उस प्रदेश का सुप्रसिद्ध यक्ष था। उसका आयतन पुष्पवाटिका से सटा हुआ था। अर्जुन यक्ष का भक्त था। यह भक्ति उसे वंश-परंपरा से प्राप्त थी।

राजगृह में ललिता नाम की एक 'गोष्ठी' थी। उसके सदस्य गोष्ठिक कहलाते थे। उस दिन छह गोष्ठिक पुरुष यक्षायतन में क्रीड़ा कर रहे थे। अर्जुन अपनी नित्य-चर्या के अनुसार यक्ष को पुष्पांजलि अर्पित करने के लिए यक्षायतन में प्रविष्ट हुआ। वह नहीं जानता था कि आज नियति ने उसके लिए पहले से ही कोई चक्रव्यूह रच रखा है।

गोष्ठिक पुरुषों ने अर्जुन के पीछे बंधुमती को आते देखा। उनकी काम-वासना जाग्रत हो गई। वे यक्षायतन के प्रकोष्ठ में छिप गए। मालाकार पुष्पांजलि-अर्पण के लिए नीचे झुका। उस समय छहों पुरुष बाहर निकले और मालाकार को कसकर बांध दिया। अब बंधुमती अरक्षित थी। मालाकार का शरीर बंधा हुआ था, किंतु उसकी आंखें मुक्त थीं और उससे भी अधिक मुक्त था उसका मन। गोष्ठिकों द्वारा बंधुमती के साथ किया गया अतिक्रमण वह सहन नहीं कर सका। वह भावुकता के चरम बिंदु पर पहुंचकर बोला—'मुद्गरपाणि! मैं तुम्हारी इस काष्ठ-प्रतिमा से प्रवंचित हुआ हूं। मैंने व्यर्थ ही शत-शत कार्षापणों के पुष्प इसके सामने चढ़ाए हैं। यदि तुम यहां होते तो क्या तुम्हारे सामने यह दुर्घटना घटित होती?'—वह भावना के आवेश में इतना बहा कि अपनी स्मृति खो बैठा। अकस्मात् एक तेज आवाज हुई। मालाकार के बंधन टूट गए। उसका आकार विकराल हो गया। उसने मुद्गर उठाया और सातों को मौत के घाट उतार दिया। उसका आवेश अब भी शांत नहीं हुआ।

अर्जुन की पुष्पवाटिका राजगृह के राजपथ के सन्निकट थी। उधर लोगों का आवागमन चलता था। पर यक्षायतन में घटित घटना का किसी को पता नहीं चला। मालाकार ने दूसरे दिन फिर सात पथिकों (छह पुरुष और एक स्त्री) की हत्या कर डाली। इस घटना से नगर में आतंक फैल गया। नगर के आरक्षिकों ने अनेक प्रयत्न किए, पर उस पर नियंत्रण नहीं पा सके।

सात मनुष्यों की हत्या करना अर्जुन का दैनिक कार्यक्रम बन गया। महाराज श्रेणिक के आदेश से राजगृह में यह घोषणा हो गई—'मुद्गरपाणि-यक्षायतन की दिशा में कोई व्यक्ति न जाए।' इस घोषणा के साथ राजपथ अवरुद्ध हो गया। फिर भी कुछ भूले-भटके लोग उधर चले जाते और मालाकार के शिकार बन जाते। सात मनुष्यों की हत्या का यह सिलसिला लंबे समय तक चलता रहा। छह गोष्ठिकों के पाप का प्रायश्चित्त न जाने कितने निरपराध लोगों को करना पड़ा।

जिस राजगृह को भगवान अभय का पाठ पढ़ा रहे थे, जहां भगवान की अहिंसा सुरसरिता की भांति सतत प्रवाहित हो रही थी, जिसका कण-कण श्रद्धा और संयम की सुधा से अभिषिक्त हो रहा था, वह नगर भय से संत्रस्त, हिंसा से आतंकित और संदेह से उत्पीड़ित हो रहा था। यह महावीर के लिए चुनौती थी। यह चुनौती थी उनकी अहिंसा को, उनकी संकल्प-शक्ति को और उनके धर्म की समग्र धारणा को। भगवान ने इस चुनौती को झेला। वे राजगृह पहुंचे और गुणशीलक चैत्य में ठहर गए। राजगृह के नागरिकों को भगवान के आगमन का पता लग गया। पर कौन जाए? कैसे जाए? भगवान महावीर और राजगृह के बीच में दिख रहा था सबको अर्जुन और उसका प्राणघाती मुद्गर। जनता के मन में उत्साह जागा पर समुद्र के ज्वार की भांति पुनः समाहित हो गया।

सुदर्शन का उत्साह शांत नहीं हुआ। उसने भगवान की सन्निधि में जाने का निश्चय कर लिया। उसकी विदेह-साधना बहुत प्रबल थी। मौत के भय से वह अतीत हो चुका था। उसने अपने माता-पिता से कहा—

'अंब-तात! भगवान महावीर गुणशीलक चैत्य में पधार गए हैं।'

'वत्स! हमने भी सुना है जो तुम कह रहे हो।' माता-पिता ने उत्तर दिया।

'अब हमारा क्या धर्म है?' सुदर्शन का प्रश्न था।

'हमारा धर्म है भगवान् की सन्निधि में उपस्थित होना। किंतु....।' मां-पिता बोलते-बोलते अटक गए।

'अंब-तात! भय के साम्राज्य में किंतु का अंत कभी नहीं होगा।' सुदर्शन ने कहा।

'क्या जीवन का कोई मूल्य नहीं है?' इस बार मां-पिता का प्रश्न था।

'धर्म का मूल्य उससे बहुत अधिक है। अल्पमूल्य का बलिदान कर यदि मैं बहुमूल्य को बचा सकूं तो मुझे प्रसन्नता ही होगी।' सुदर्शन की प्रतिक्रिया थी।

'वत्स! अभी मगध सम्राट श्रेणिक भी भगवान की सन्निधि में नहीं पहुंचे हैं, तब हमें क्यों इतनी चिंता मोल लेनी चाहिए?' सुदर्शन के सम्मुख फिर प्रश्न हुआ।

'यह चिंता का प्रश्न नहीं है, यह धर्म का प्रश्न है। यह सत्ता का प्रश्न नहीं है, यह श्रद्धा का प्रश्न है। क्या श्रद्धा के क्षेत्र में मेरा स्थान सम्राट से अग्रिम पंक्ति में नहीं हो सकता?' सुदर्शन का उत्तर था।

'क्यों नहीं हो सकता?'

'फिर आप सम्राट की ओट में मुझे क्यों रोकना चाहते हैं?' सुदर्शन ने साहसपूर्वक कहा।

'अच्छा वत्स! तुम भगवान की शरण में जाओ। तुम्हारा कल्याण हो। निर्विघ्न हो तुम्हारा पथ।' माता-पिता का अंततः आशीर्वाद मिल ही गया।

सुदर्शन माता-पिता का आशीर्वाद ले घर से चला। मित्रों ने एक बार फिर रोका और टोका। उन सबने भी, जिन्हें इस बात का पता चला। पर सत्याग्रही के पैर कब रुक सके हैं? उसके पैर जिस दिशा में उठ जाते हैं, वे मंजिल तक पहुंचे बिना रुक नहीं पाते। सुदर्शन अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ा। वह अकेला था। उसके साथ था केवल श्रद्धा का बल। वह प्रतोली-द्वार तक पहुंचा। आरक्षिक ने उसे रोककर पूछा—

'कहां जाना चाहते हो?'

'गुणशीलक चैत्य में।'

'किसलिए?'

'भगवान महावीर की उपासना के लिए।'

'बहुत अच्छा। किंतु श्रेष्ठिपुत्र! इस राजपथ से जाना क्या मौत को निमंत्रण देना नहीं है?' आरक्षिक ने चिंता के स्वर में कहा।

'हो सकता है, किंतु मैं मौत को निमंत्रित करने नहीं जा रहा हूं।' सुदर्शन ने दृढ़ता के साथ कहा।

'यह राजपथ राजाज्ञा द्वारा अवरुद्ध है, आपको पता होगा?' यह आरक्षिक की आखिरी कोशिश थी।

'हां, मुझे मालूम है। पर मैं जिस उद्देश्य से जा रहा हूं, वह अबाधित है। जिसका सबको भय है, उससे मैं भयभीत नहीं हूं, फिर यह राजपथ मेरे लिए क्यों अवरुद्ध होगा?'

आरक्षिक इसके उत्तर की खोज में लग गया। सुदर्शन के पैर आगे बढ़ गए। सुनसान राजपथ ने सुदर्शन की प्रत्येक पद-चाप को ध्यान से सुना। उसमें न कोई धड़कन थी, न आवेग और न विचलन। सुदर्शन राजपथ के कण-कण को ध्यान से देखता जा रहा था, पर उसे सर्वत्र दिखाई दे रहा था महावीर का प्रतिबिंब। वह सुन रहा था पग-पग पर महावीर का सिंहनाद।

राजपथ के आस-पास अर्जुन घूम रहा था। लग रहा था जैसे काल की छाया घूम रही हो। उसने सुदर्शन को आते देखा। उसे लगा जैसे कोई बलि का बकरा आ रहा है।

वह सुदर्शन की ओर दौड़ा। भय, अभय को परास्त करने के लिए विह्वल हो उठा। श्रद्धा और आवेश के समर की रणभेरी बज चुकी। सुदर्शन ने अपनी तैयारी पूर्ण कर ली। उसने समता की दीक्षा स्वीकार की। वह संकल्प का कवच पहन कायोत्सर्ग की मुद्रा में खड़ा हो गया। उसकी ध्यान-मुद्रा उपसर्ग का अंत होने से पहले भग्न नहीं होगी, यह उसकी आकृति बता रही थी।

अर्जुन निकट आते ही गरज उठा—'तुम कौन हो? तुम्हारा नाम क्या है? क्या तुम्हारे माता-पिता नहीं हैं? कोई मित्र और परामर्शक नहीं है? तुम्हें नहीं मालूम है कि यहां आने पर तुम मृत्यु के अतिथि बन जाओगे? तुम बोल नहीं रहे हो! बड़े लापरवाह दीख रहे हो! अब तैयार हो जाओ तुम इस मुद्‌गरपाणि का प्रसाद पाने के लिए।'

सुदर्शन अपने ध्यान में लीन था। वह न बोला और न प्रकंपित हुआ। अर्जुन का आवेश और अधिक बढ़ गया। उसने मुद्‌गर को आकाश में उछालने का प्रयत्न किया। पर हाथ उसकी इच्छा को स्वीकार नहीं कर रहे थे। वे जहां थे, वहीं स्तंभित हो गए। अर्जुन ने अपनी सारी शक्ति लगा दी। पर उसका शरीर उसकी हर इच्छा को अस्वीकार करने लगा। उसका मनोबल टूट गया। आवेश शांत हो गया।

अब अर्जुन केवल अर्जुन था। उसका शरीर आवेश से शिथिल हो चुका था। वह अपने को संभाल नहीं सका। वह सुदर्शन के पैरों में लुढ़क गया।

सुदर्शन ने देखा—उपसर्ग शांत हो चुका है। भय की काली घटा बिना बरसे ही फट गई है। उसने अपनी अर्धोन्मीलित आंखें खोलीं। कायोत्सर्ग संपन्न किया। उसने महावीर का स्मरण करते हुए अर्जुन के सिर पर हाथ रखा। उसकी मूर्च्छा टूट गई। उसके चिदाकाश में जागृति की पहली किरण प्रकट हुई। उसने जागृति के क्षण में फिर अपने प्रश्न को दोहराया—

'तुम कौन हो?'

'मैं भगवान महावीर का उपासक हूं।'

'कहां जा रहे हो?'

'भगवान महावीर की उपासना करने जा रहा हूं।'

'क्या मैं भी जा सकता हूं?'

'किसी के लिए प्रवेश निषिद्ध नहीं है।'

अर्जुन और सुदर्शन एक साथ भगवान के पास पहुंचे। आरक्षिकों ने श्रेणिक को सूचना दी कि पाप शांत हो गया है। राजपथ निर्विघ्न है। निरंकुश हाथी पर अंकुश का नियंत्रण है। सुदर्शन के साथ अर्जुन भी भगवान महावीर के पास पहुंच गया है। राजकीय घोषणा के साथ राजपथ का आवागमन खुल गया।

भगवान के कण-कण में अहिंसा का प्रवाह था। मैत्री और प्रेम की अजस्र धाराएं बह रही थीं। उनमें स्नात व्यक्ति की क्रूरता धुल जाती थी। अर्जुन का मन मृदुता का स्रोत बन गया।

मनुष्य के अंतःकरण में कृष्ण और शुक्ल—दोनों पक्ष होते हैं। जिनकी चेतना तामसिक होती है, वे प्रकाश पर तमस का ढक्कन चढ़ा देते हैं। जिनकी चेतना आलोकित होती है, वे प्रकाश को उभार तमस को विलीन कर देते हैं। भगवान ने अर्जुन के अंतःकरण को आलोक से भर दिया। उसके मन में समता की दीपशिखा प्रज्वलित हो गई। वह मुनि बन गया।

कल का हत्यारा आज का मुनि—यह नाटकीय परिवर्तन जनता के गले कैसे उतर सकता है? हर आदमी उस सत्य को नहीं जानता कि मनुष्य के जीवन में बड़े परिवर्तन नाटकीय ढंग से ही होते हैं। असाधारण घटना साधारण ढंग से नहीं हो सकती। साधारण आदमी असाधारण घटना को एक क्षण में पकड़ भी नहीं पाता। अर्जुन से आतंकित जनता उसके मुनित्व को स्वीकार नहीं कर सकी।

अर्जुन ने भगवान के पास समता का मंत्र पढ़ा। उसकी समता प्रखर हो गई। मान-अपमान, लाभ-अलाभ, जीवन-मृत्यु और सुख-दुख में तटस्थ रहना उसे प्राप्त हो गया।

कुछ दिनों बाद मुनि अर्जुन भिक्षा के लिए राजगृह में गया। घर-घर से आवाजें आने लगीं—इसने मेरे पिता को मारा है, भाई को मारा है, पुत्र को मारा है, माता को मारा है, पत्नी को मारा है, मित्र को मारा है। कहीं गालियां, कहीं व्यंग्य, कहीं तर्जना और कहीं प्रताड़ना। अर्जुन देख रहा था—यह कृत की प्रतिक्रिया है, अतीत के अनाचरण का प्रायश्चित्त है। उसे यदि रोटी मिलती है तो पानी नहीं मिलता और यदि पानी मिलता है तो रोटी नहीं मिलती। पर उसका मन न रोटी में उलझता है और न पानी में। उसका मन समता में सदा के लिए सुलझ गया। उसके समत्व की निष्ठा ने जनता का आक्रोश सद्‌भावना में बदल दिया। अहिंसा ने हिंसा का विष धो डाला।[2]

सहिष्णुता का आयाम

मेतार्य जन्मना चांडाल थे। वे भगवान महावीर के संघ में दीक्षित हुए। उनका मुनि-जीवन ज्ञान और समता की साधना से प्रदीप्त हो उठा। उनके अंतर की ज्योति जगमगा उठी। वे संघ की सीमा से मुक्त हो गए। अब वे अकेले रहकर साधना करने लगे। एक बार वे राजगृह में आए। स्वर्णकार के घर भिक्षा लेने पहुंचे। स्वर्णकार उन्हें देख हर्ष-विभोर हो उठा। वह वंदना कर बोला—'श्रमण! आप यहीं ठहरें। मैं दो क्षण में यह देखकर आ रहा हूं कि रसोई बनी है या नहीं?' स्वर्णकार भीतर घर में गया। मुनि वहीं खड़े रहे। स्वर्णकार की दुकान में क्रौंच पक्षी का युगल बैठा था। स्वर्णकार के जाते ही वह आगे बढ़ा और दुकान में पड़े स्वर्णयवों को निगल गया।

स्वर्णकार मुनि को घर में ले जाने लौटा और देखा कि स्वर्णयव लुप्त हैं। वह स्तब्ध रह गया। उसके मन में आवेश उतर आया। उसने स्वर्णयवों के विषय में मुनि से पूछा। मुनि मौन रहे। स्वर्णकार का आवेश बढ़ गया। वह बोला—'श्रमण! मैं अभी आपके सामने स्वर्णवय यहां छोड़कर गया। कुछ ही क्षणों में मैं यहां वापिस लौट आया। इस बीच कोई दूसरा व्यक्ति यहां आया भी नहीं। मेरे स्वर्णयवों के लुप्त होने का उत्तरदाई आपके सिवाय दूसरा कौन हो सकता है?' मुनि अब भी मौन रहे।

स्वर्णकार मुनि से उत्तर चाहता था। मुनि उत्तर दे नहीं रहे थे। उनका मौन स्वर्णकार की सहनशीलता पर चोट करने लगा। उसने आहत स्वर में कहा—'श्रमण! वे स्वर्णवय मेरे नहीं हैं। वे सम्राट श्रेणिक के हैं। मैं उनके अंतःपुर के आभूषण तैयार कर रहा हूं। यदि वे स्वर्णयव नहीं मिलेंगे तो मेरी क्या दशा होगी, क्या आप नहीं जानते? आप श्रमण हैं। आपने कितना वैभव छोड़ा है! आप मेरे सम्राट के दामाद रहे हैं। अब आप मेरे आराध्य भगवान महावीर के संघ में दीक्षित हैं। आप अपने त्याग को देखें, सम्राट की ओर देखें, भगवान की ओर देखें और मेरी ओर देखें। मन से लोभ को निवारें, मेरी वस्तु मुझे लौटा दें। मनुष्य से भूल हो सकती है। आप साधक हैं। अभी सिद्ध नहीं हैं, आप से भी भूल हो सकती है। अभी और कोई नहीं जानता। आप जानते हैं या मैं जानता हूं। तीसरा कोई नहीं जानता। आप मेरी बात पर ध्यान दें। मेरी वस्तु मुझे लौटा दें। भूल के लिए प्रायश्चित्त करें।'

स्वर्णकार द्वारा इतना कहने पर भी मुनि का मौन भंग नहीं हुआ। स्वर्णकार ने सोचा, श्रमण का मन ललचा गया है। ये दंड के बिना नहीं मानेंगे। उसने रास्ता बंद कर दिया। वह तत्काल गीला चर्मपट्ट लाया। मुनि का सिर उससे कसकर बांध दिया। वे भूमि पर लुढ़क गए। सूर्य के ताप से चर्मपट्ट और साथ-साथ मुनि का सिर सूखने लगा।

मुनि ने सोचा—इसमें स्वर्णकार का क्या दोष है? वह बेचारा भय से आतंकित है। मैं भी मौन-भंग कर क्या करता? मेरे मौन-भंग का अर्थ होता—क्रौंच-युगल की हत्या। यह चक्रव्यूह किसी की बलि लिए बिना भग्न होने वाला नहीं है। दूसरों के प्राणों की बलि देने का मुझे क्या अधिकार है? मैं अपने प्राणों की बलि दे सकता हूं।

वे अपने प्राणों की बलि देने को प्रस्तुत हो गए। उनका चित्त ध्यान के प्रकोष्ठ में पहुंच गया। उनका मन सरिता में नौका की भांति तैरने लगा। कष्ट शरीर को होता है। उसकी अनुभूति मन को होती है। दोनों घुले-मिले रहते हैं, तब कष्ट का संवेदन क्षीण हो जाता है। यह है सहिष्णुता—समता के विवेक से पल्लवित, पुष्पित और फलित।

द्वंद्व का होना जागतिक नियम है। इसे कोई बदल नहीं सकता। द्वंद्व की अनुभूति को बदला जा सकता है। यह परिवर्तन द्वंद्वातीत चेतना की अनुभूति होने पर ही होता है। द्वंद्व की अनुभूति का मूल राग और द्वेष का द्वंद्व है। इस द्वंद्व का अंत होने पर द्वंद्वातीत चेतना जाग्रत होती है। समता का आदि-बिंदु द्वंद्वातीत चेतना की जागृति का आदि-बिंदु है। समता का चरम-बिंदु द्वंद्वातीत चेतना की पूर्ण जागृति है। इस अवस्था में समता और वीतरागता एक हो जाती हैं। साधन साध्य में विलीन हो जाता है। वस्तु-जगत् में द्वैत रहता है। किंतु चेतना के तल पर द्वंद्व के प्रतिबिंब समाप्त हो जाते हैं। विषमता-विहीन समता अपने स्वरूप को खो देती है। तब न विषमता रहती है और न समता, कोरी चेतना शेष रह जाती है। ❖

संदर्भ :

1. आवश्यकचूर्णि उत्तरभाग, पृ. 168 आदि।
2. अंतगडदसाओ, 6।

❖❖

हमारी सबसे बड़ी जरूरत यह है कि हम हिंसा का तरीका कभी न बरतें, क्योंकि हिंसा न सिर्फ अपने-आप में बुरी है, बल्कि उससे फूट पैदा होती है और बुरे नतीजे निकलते हैं।

—जवाहरलाल नेहरू

दान-दया के साथ ही आचार्य भिक्षु ने लौकिक और लोकोत्तर धर्म की सीमा-रेखा भी खींची। कुछ दान व दया लौकिक रूप से श्रेय हो सकते हैं, उपयोगी हो सकते हैं, लेकिन आत्मिक या आध्यात्मिक दृष्टि से मूल्य-शून्य होते हैं। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में हम देखते हैं कि समाज का हर प्राणी एक-दूसरे पर आश्रित है। सामाजिक-आर्थिक कार्यों में एक-दूसरे का सहयोग लेना ही होता है। इन कार्यों से लौकिक साध्य प्राप्त होते हैं, लोकोत्तर नहीं। समाजवादी-साम्यवादी अवधारणा ने तेरापंथ की दान-दया की मान्यता को पुष्ट किया है। साम्यवादी विचारधारा के अनुसार कोई व्यक्ति अपने को श्रेष्ठ मानकर याचकों की फौज तैयार करे—यह मूलतः गलत है। युगीन दृष्टि में श्रमिक, कृषक, असहाय वर्ग भी समान वितरण चाहता है

❑ प्रासंगिक हैं आज भी आचार्य भिक्षु ❑

❑ जिनेंद्र कोठारी ❑

तेरापंथ धर्मसंघ का उद्‌गम जैन धर्म के एक विशुद्ध संस्करण के रूप में हुआ माना जा सकता है। घोर कष्टों एवं मिथ्याग्रह के मध्य भी आचार्य भिक्षु अडोल रहे। वे दंभचर्चा और आसक्ति आदि के विरोध में भी मुखर रहे। सत्य कहते हुए आचार्य भिक्षु कभी सकुचाए नहीं। आचार्य भिक्षु के विचारों ने, दर्शन ने तत्कालीन मारवाड़ राज्य में धर्मक्रांति की। आज जिसका घोष अखिल विश्व में व्याप्त है। आचार्य भिक्षु के विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक और उपयोगी हैं, जितने कि उस काल में रहे।

आचार्य भिक्षु के विचारों का महत्त्वपूर्ण अवदान रहा अहिंसा एवं अहिंसक दृष्टिकोण की यथार्थपरक व्याख्या। बड़े जीवों की रक्षा के लिए छोटे जीवों के वध को गंभीरता से नहीं लिया जाता था। अहिंसा के क्षेत्र में भी इस प्रकार एक तरह से बल-प्रयोग मान्य समझा जाने लगा था। आचार्य भिक्षु ने भगवान महावीर की इस वाणी का स्पष्ट घोष किया—'सब जीव समान हैं, कोई जीव मरना नहीं चाहता, सब जीव जीना चाहते हैं। अहिंसा बल-प्रयोग से नहीं, वरन् हृदय-परिवर्तन, भाव-परिवर्तन से ही संभव है।' आचार्य भिक्षु के इस घोष का तत्कालीन समाज ने घोर विरोध किया। भगवान महावीर के मार्ग से पथ-विचलन का आरोप भी लगाया गया। आचार्य भिक्षु के इस अहिंसा-प्रधान विचार को आज के वैज्ञानिक युग में पुष्ट किया गया है। आज का मनोविज्ञान भी समझा-बुझाकर हृदय-परिवर्तन से ही मानवीय आचरण में परिवर्तन को स्वीकार करता है। कई राष्ट्रों ने मृत्युदंड को समाप्त कर दिया है। अनेक राष्ट्रों में इसे समाप्त करने की मांग उठ रही है। आज कारागृहों में भी अपराधियों के सुधार पर जोर दिया जाता है, न कि दंड पर। स्पष्ट है कि हिंसा से अहिंसा का आविर्भाव कभी नहीं हो सकता। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भी आचार्य भिक्षु के विचारों के समर्थक कहे जा सकते हैं। महात्मा गांधी की भी यही मान्यता रही कि एक को बचाने के लिए, दूसरे की हत्या नहीं की जा सकती। अहिंसावादियों का कर्तव्य विनम्रता के साथ समझाने-बुझाने का ही है। आज का बौद्धिक वर्ग भी निरपराध प्राणियों की हिंसा का विरोध करता है। धर्म के नाम पर पशुबलि अब लगभग बंद हो चुकी है।

❑ भिक्षु अभिनिष्क्रमण दिवस ❑
चैत्र शुक्ला त्रयोदशी

आचार्य भिक्षु का दूसरा महत्त्वपूर्ण विचार था—शुद्ध साध्य एवं शुद्ध साधन। आचार्य भिक्षु ने स्पष्ट रूप से कहा कि शुद्ध साध्य की प्राप्ति शुद्ध साधन के उपयोग से ही

संभव है। तत्कालीन समाज में शुद्ध साध्य लिए शुद्ध साधन पर जोर नहीं दिया जाता था। यह मान्यता थी कि अशुद्ध साधनों से भी धर्म की प्राप्ति हो सकती है। आचार्य भिक्षु ने खुले शब्दों में घोषणा कि 'साध्य के सही होने पर भी यदि साधन गलत होंगे तो साध्य को बिगाड़ देंगे, उसे गलत दिशा में मोड़ देंगे।' वे मानते थे कि साधन एवं साध्य में अटूट संबंध है। इसका प्रत्यक्षतः उदाहरण वर्तमान में राजनीतिक व्यवस्था के विश्रृंखलन में देख सकते हैं। लोकतंत्र एक अच्छी व्यवस्था होते हुए भी आज डगमगा रहा है। लक्ष्य की पूर्ति के लिए अशुद्ध साधनों को प्रयोजनीय मानने का परिणाम है कि लोकतंत्र कमजोर होता जा रहा है और राजनीतिक चिंतक परेशान हैं। आचार्य भिक्षु ने साधन और साध्य विचार को स्पष्ट करते हुए कहा— 'अध्यात्म की भाषा में जीवन साध्य नहीं है, साध्य है मोक्ष। मोक्ष की प्राप्ति संयम के साधन से ही प्राप्त की जा सकती है।' यहां पर भी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और स्वामीजी के विचारों में अद्भुत साम्य मिलता है। गांधीजी ने कहा है—'शुद्ध साध्य की प्राप्ति के लिए हमारे साधन भी श्रेष्ठ एवं पवित्र होने चाहिए, क्योंकि जैसे हमारे साधन होंगे, वैसे ही हमारे साध्य और ध्येय होंगे।' इस लक्ष्य को लेकर महात्मा गांधी ने अहिंसक सत्याग्रह के माध्यम से देश के स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व किया। आचार्य भिक्षु ने खुली घोषणा की कि देव, गुरु और धर्म—ये तीनों अनमोल रत्न हैं। इनको धन या असंयम से नहीं खरीदा जा सकता। यदि धन से ही धर्म हो तो भगवान की पहली देशना विफल नहीं जाती। अतः धर्म-रूपी साध्य की प्राप्ति संयम, त्याग, तपस्या से ही संभव है। आज हम देखते हैं कि शुद्ध साधन की बात राष्ट्र एवं समाज में गौण हो रही है। इसके परिणामस्वरूप हमारे सामने असंतोष, घृणा, वैमनस्य एवं पारिवारिक कलह लगातार बढ़ रहे हैं। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के शब्दों में यदि हम आचार्य भिक्षु के आध्यात्मिक चिंतन को एक शब्द में बांधना चाहें तो उसे 'साध्य-साधनावाद' कह सकते हैं।

आचार्य भिक्षु का सर्वाधिक चर्चित विचार या जिसकी सर्वाधिक आलोचना हुई, वह दान और दया की उनकी अवधारणा थी। दान के संबंध में स्वामीजी ने अपने विचार स्पष्ट करते हुए कहा—'जिस दान से संयम में अभिवृद्धि हो वह दान श्रेष्ठ है।' स्वामीजी ने अभयदान को सर्वश्रेष्ठ बताया। आचार्य भिक्षु के मतानुसार किसी प्राणी को न मारना, न बंधन करना, न यातना पहुंचाना तथा न भासित करना चाहिए। ऐसा संकल्प सारे जगत् को अभय प्रदान करता है। अहिंसा का चरमोत्कर्ष होने से सर्वांश में धर्म है तथा अभयदान श्रेष्ठ दान है। इसके सिवाय जहां-जहां संयम का पोषण होता है, यानी संयती साधु के संयम-पालन में सुगमता प्रदान करे, धर्माचरण में लोगों को प्रेरणा, सहयोग एवं सहभागिता प्रदान करे, आश्रव मिटाने की दिशा में किसी को गति दे—तो निश्चित ही ऐसा सहयोग या दान धर्मदान है एवं श्रेयष्कर है। सही दान के लिए यह आवश्यक है कि हमारी मनोभावना और दान की जा रही वस्तु के दान से हिंसा न हो एवं हिंसा होने की संभावना न हो। दान लेने वाला सुपात्र आत्मार्थी निर्ग्रंथ साधु हो तभी दान का लाभ मिलता है। दया के संबंध में भी आचार्य भिक्षु ने बहुत स्पष्ट विचार रखे। उन्होंने दया को एक रूप से अहिंसा का पर्यायवाची माना। वस्तुतः किसी पर हिंसा न करना ही वास्तविक दया है।

वस्तुतः वही दया श्रेष्ठ है जो अहिंसापरक हो, जिससे आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त हो एवं जो व्यक्ति को निरभिमानता की ओर ले जाए। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी दया को धर्म का मूल एवं पाप का मूल अभिमान को बताया। इसका अर्थ यह हुआ कि पाप का विलोम धर्म है, तो अभिमान का विलोम निरभिमानता है। अतः दया का समानार्थक शब्द है निरभिमानता। अहंकार सब दुखों की जड़ है, जिसमें व्यक्ति अपने को अन्य से पराया समझने लगता है। जहां अहंकारशून्यता की स्थिति आती है या यह कहें कि निरभिमानता की साधना सध जाती है, वहां व्यक्ति दूसरे प्राणी को अपने तुल्य समझने लगता है। फिर उसके वध, बंधन, यातना, पीड़ा इत्यादि में प्रवृत्त नहीं होता। यथार्थ में यही दया है। अतः जहां दया है—वहां अहिंसा है। दया एवं अहिंसा को हम अलग करके नहीं देख सकते। दान-दया के साथ ही आचार्य भिक्षु ने लौकिक और लोकोत्तर धर्म की सीमा-रेखा भी खींची। कुछ दान व दया लौकिक रूप से श्रेय हो सकते हैं, उपयोगी हो सकते हैं, लेकिन आत्मिक या आध्यात्मिक दृष्टि से मूल्य-शून्य होते हैं। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में हम देखते हैं कि समाज का हर प्राणी एक-दूसरे पर आश्रित है। सामाजिक-आर्थिक कार्यों में एक-दूसरे का सहयोग लेना ही होता है। इन कार्यों से लौकिक साध्य प्राप्त होते हैं, लोकोत्तर नहीं। समाजवादी-साम्यवादी अवधारणा ने तेरापंथ की दान-दया की मान्यता को पुष्ट किया है। साम्यवादी विचारधारा के अनुसार कोई व्यक्ति अपने को श्रेष्ठ मानकर याचकों की फौज तैयार करे—यह मूलतः गलत है। युगीन दृष्टि में श्रमिक, कृषक,

असहाय वर्ग भी समान वितरण चाहता है। याचना या भीख को हेय समझा जाता है। आचार्यश्री तुलसी और आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने बार-बार दोहराया है कि यदि धन या भौतिक सामग्री देकर दान-दया हो जाती तो संसार के सारे धनपति सबसे बड़े धार्मिक कहलाते और गरीब के हिस्से में कुछ भी शेष नहीं रहता। आचार्य तुलसी एवं आचार्य महाप्रज्ञजी ने शताब्दियों से चली आ रही भ्रांतियों को युग की भाषा में कहकर उनका निराकरण किया है। बौद्धिक एवं धार्मिक वर्ग ने तेरापंथ की दान-दया को समझा है एवं प्रतिष्ठित किया है। उपाध्याय अमरमुनि, दलसुखभाई मालवणिया, पंडित सुखलाल इत्यादि विद्वानों ने, जो प्रचलित धारणानुसार तेरापंथ की दान-दया का विरोध करते थे, उन्होंने भी स्वीकार किया।

आत्मिक अथवा आध्यात्मिक दृष्टिकोण के साथ-साथ संघीय व्यवस्था एवं सामूहिक साधना के जो सूत्र एवं विचार-व्यवस्थाएं आचार्य भिक्षु ने दीं, वे मर्दायाएं एवं अनुशासन-व्यवस्था आज 244-45 वर्ष बाद भी अक्षुण्ण हैं। व्यवस्थाएं प्रमुखतः निम्नोक्त हैं—

(1) एक आचार्य का नेतृत्व। (2) सभी साधु-साध्वी गणों के चातुर्मास-विहार एक आचार्य की आज्ञा से। (3) व्यक्तिगत शिष्य प्रथा पर रोक। (4) आचार्य द्वारा अपने उत्तराधिकारी के मनोनयन में किसी का हस्तक्षेप नहीं। (5) श्रद्धा-तत्त्व की चर्चा सामूहिक होने के बाद आचार्य द्वारा एक-सी प्ररूपणा एवं उसको सकल संघ द्वारा मान्य करना। (6) संघ में सामूहिक रूप से रहकर आत्मसाधना करना।

ऐसे अनुशासन और इन मर्यादाओं के कारण ही तेरापंथ धर्मसंघ निरंतर प्रगतिशील है। जिन ऊंचाइयों को छुआ है, उससे यह संघ आज जैन धर्म के पर्याय के रूप में जाना जाने लगा है। एक आचार्य का नेतृत्व एवं शिष्य प्रथा की समाप्ति से समूचे संघ से अहंकार-ममकार की भावना का सहज ही विसर्जन हो गया है। संघीय साधना एवं सामूहिक श्रद्धा-तत्त्व की चर्चा से सामुदायिक भावना एवं सहभागिता का विकास हुआ है। इससे श्रमण-श्रमणियों को ही नहीं, इसके अनुपालकों को भी लाभ हुआ है। इन विचारों की वर्तमान प्रासंगिकता इस बात से स्पष्ट हो जाती है कि ये विचार 244-45 वर्षों से अबाध रूप से गतिशील हैं और संघ एवं संगठन को प्राणवान-ऊर्जावान बनाए हुए हैं।

निष्कर्षतः आचार्य भिक्षु के विचारों को निम्न बिंदुओं में भाषित कर सकते हैं—

(1) अशुद्ध साधन से शुद्ध साध्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। (2) बड़े जीवों के लिए छोटे जीवों की हिंसा करना अहिंसा नहीं हैं। (3) सब जीव समान हैं। (4) अहिंसा एवं दया एक हैं। दोनों पृथक नहीं हो सकते। (5) जिस दान से आत्मकल्याण हो एवं संयम में सहायता मिलती हो, वही दान श्रेष्ठ है। (6) धर्म त्याग में है, भोग में नहीं। (7) लौकिक एवं आध्यात्मिक धर्म भिन्न हैं। दोनों के लक्ष्य भी भिन्न हैं। (8) आवश्यक हिंसा भी अहिंसा नहीं है। हमें अनावश्यक हिंसा से बचना चाहिए। (9) संघीय दृष्टि से संघ में एक गुरु एवं एक संविधान हो।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ये सभी विचार उतने ही सत्य और सापेक्ष हैं, जितने आज से 244-45 वर्ष पूर्व थे। वस्तुतः वही व्यक्ति कालातीत होता है जिसके विचार वर्तमान में ही नहीं, भविष्य में भी अपनी मूल्यवत्ता रखते हों, उनकी सापेक्षता एवं उपयोगिता हो। इस दृष्टि से आचार्यश्री भिक्षु एक कालजयी, एक असीम व्यक्तित्व थे।

जैन परंपरा में आचार्य भिक्षु का उदय एक नए आलोक की सृष्टि है। आचार्य भिक्षु का जन्म वि. 1783 में हुआ, वि. 1808 को स्थानकवासी परंपरा में मुनि बने, वि. 1817 में तेरापंथ का प्रवर्तन किया एवं वि. 1860 में इस संसार से महाप्रयाण कर गए। जन्म एवं महाप्रयाण के मध्य जो 77 वर्ष के कालखंड का जीवन आचार्य भिक्षु ने जीया, जो दर्शन आचार्य भिक्षु ने दिया एवं महावीर के सिद्धांतों एवं विचारों की आचार्य भिक्षु ने जो प्रतिस्थापना की इन सबने आचार्य भिक्षु को अमम एवं असीम बना दिया। ❖

दमन, गृहयुद्ध तथा सांप्रदायिक हिंसा के इतिहासगत अनुभवों ने धार्मिक सहिष्णुता के विचार को जन्म दिया। यदि हम यह मानकर भी चलें कि हमारे धर्म में ही अंतिम और अनन्य सत्य निहित है तो भी दूसरों को यह स्वीकार कराने की कीमत इतनी अधिक चुकानी पड़ती है कि आज के बहुधर्मी संसार में इसे बिल्कुल उचित नहीं ठहराया जा सकता। सहिष्णुता का अर्थ यह नहीं कि हम अपनी आस्थाओं को त्याग दें।

—डेविड बीथम
—केविन बॉयले

हम अपनी सभ्यता सबसे प्राचीन ही नहीं, महान भी मानते हैं। लेकिन केवल भाषण देने के समय या पूजा-पाठ के समय या स्तुति-गान के समय उसका उपयोग होता है। उसको जीने की हमें कभी चिंता नहीं होती, जबकि अनादि काल से हमारे धर्मग्रंथ, जिनमें सबसे प्राचीन वेद हैं, बार-बार दूसरों के लिए जीने का आह्वान करते हैं। ऋग्वेद में स्पष्ट रूप में यह कहा गया है कि 'केवलाद्यो भवति केवलादि', अर्थात् अकेले खाने वाला पापी होता है

❑ भोगो, पर त्याग से ❑

❑ विष्णु प्रभाकर ❑

आज हम एक ऐसे युग में रह रहे हैं जहां आप्त वाक्य तो बहुत बोले जाते हैं, पर जीवन में उनका उपयोग करने का साहस किसी में नहीं है। हमने शब्द को पकड़ लिया है, लेकिन शब्द तो उसका अर्थ ही हम तक पहुंचाने के लिए होता है। पर, उस अर्थ को समझने की हम कभी चेष्टा नहीं करते। इसलिए उसको जीवन में उतार भी नहीं सकते।

आज का युग आपा-धापी का युग है। 'स्व' ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। 'पर' शब्द ही हम भूल गए हैं, जबकि हमारे सभी दार्शनिकों, संतों ने सदा परहित की बात कही है। तुलसीदास के शब्दों में 'परहित सरिस धरम नहि भाई।' यह बात हमारे मस्तिष्क के किसी कोने में दब कर रह गई है।

तुलसीदासजी तो अभी सोलहवीं शताब्दी में हुए थे। जबकि हमारे यहां तो अनादि काल से ही हमें यही शिक्षा दी जाती रही है कि जो दूसरों के लिए जीना जानता है, वही सचमुच जीना जानता है। आज हम देखें तो जिसे काला धन या नंबर दो का पैसा कहते हैं, वह अरबों रुपयों के रूप में कुछ व्यक्तियों के घरों में बोरियों में भर रखा है। जबकि लगभग साठ प्रतिशत आबादी जीवन-रेखा के नीचे जी रही है, यानी उसके पास खाने के लिए भी बहुत कम है।

हम अपनी सभ्यता सबसे प्राचीन ही नहीं, महान भी मानते हैं। लेकिन केवल भाषण देने के समय या पूजा-पाठ के समय या स्तुति-गान के समय उसका उपयोग होता है। उसको जीने की हमें कभी चिंता नहीं होती, जबकि अनादि काल से हमारे धर्मग्रंथ, जिनमें सबसे प्राचीन वेद हैं, बार-बार दूसरों के लिए जीने का आह्वान करते हैं। ऋग्वेद में स्पष्ट रूप में यह कहा गया है कि 'केवलाद्यो भवति केवलादि', अर्थात् अकेले खाने वाला पापी होता है।

'ईशावास्यमिदं' भी ईशोपनिषद् के पहले मंत्र का अंश है और यह उपनिषद् यजुर्वेद का अंग भी है। इसका अर्थ अनेक लोगों ने अनेक प्रकार से किया है। लेकिन मूलतः एक बात स्पष्ट है कि इस मंत्र का स्रष्टा यह स्पष्ट कह रहा है कि यह अखिल विश्व-ब्रह्मांड ईश्वर से व्याप्त है। वैज्ञानिक इससे मतभेद रख सकते हैं, लेकिन जो परम धार्मिक हैं, वे यही मानते हैं कि सब-कुछ ईश्वर से व्याप्त है। इस जगत् में जो-कुछ भी है, उसे त्याग से भोगो। दूसरे के धन पर लालच मत करो, वह तो किसी का भी नहीं है।

वास्तव में सृष्टि के आरंभ में जिन ग्रंथों का या सभ्यता का निर्माण हुआ, वह समतावाद का ही रूप है। समतावाद का अर्थ है—सभी का एक समान हक। दूसरे के हक की रक्षा करने से ही हमारे हकों की सुरक्षा हो सकती है।

इस परंपरा को आज तक हमने शब्दों में निभाया, लेकिन अर्थ के क्षेत्र में हमने इसका उपयोग करने की चिंता नहीं की। संत लोग बराबर हमें यही कहते रहे :

सांई इतना दीजिए, जामे कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा न रहूं, साधु न भूखा जाए।।

शेष पृष्ठ 56 पर

तुम्हारे षड्यंत्र और चक्रव्यूह को खूब समझ रही थी। सो उसकी धुरी बनकर प्रस्तुत हो गई थी। ....लेकिन तुम सचमुच ही चले जाओगे, यह तो कल्पना भी न कर सकी थी। ....पर, एक दिन अचानक सुनाई पड़ा : 'वर्द्धमान गृह-त्याग कर गए।' ....एक ठोकर सीधी आकर मेरी छाती पर लगी थी। मानो वह चुनौती वैशाली और लोक के प्रति न होकर, सीधी मेरे ललाट के तिलक पर आकर टकराई थी। बेशक ....क्यों अनिवार्य हो कि मुझे पूछ कर जाओ तुम? मैं होती ही कौन हूं? अनंतों का सम्राट् किसी की अनुमति लेकर नहीं चलता

❑ तुम्हारी चंदन मौसी ❑

❑ वीरेंद्रकुमार जैन ❑

कहानी

'वर्द्धमान, आखिर तुम चले ही गए...?' : तुम्हारे महाभिनिष्क्रमण की खबर पा कर, इतना ही तो मेरे मुंह से निकला था। ....उदास होकर वातायन की मेहराब थामे, उसके खंभे पर माथा ढाल कर खड़ी रह गई थी और सूर्यास्त तक भी मुझे होश नहीं आया था। मूर्तिवत स्तंभित थी, और दिशाओं के पार दूर-दूर जाती तुम्हारी पीठ देखती रह गई थी।.... जानती थी तुम्हारी नियति। फिर भी इसके लिए मन को तैयार न कर सकी थी।

....कि औचक ही तुम झटका देकर जा चुके थे। ....और मेरी नियति? नन्द्यावर्त महल में, प्रथम बार तुमसे मिलने के बाद उस ओर से ध्यान ही हट गया था। केवल तुम्हारी ओर निगाह लगी रहती थी। अपनी ओर देखने की सुध ही कहां रही थी! जैसे मैं रह ही नहीं गई थी। फिर किसकी नियति? कौन सोचे?

लेकिन जब तुम चले गए, तो अपने में लौट आने को तुम मुझे विवश कर गए। अपनी ओर देखने के सिवाय, और तुमने कुछ भी मेरे लिए संभव न रहने दिया। और तब मेरी अपनी नियति सामने आकर खड़ी हो गई। कितनी प्रश्नाकुल और अंधियारी! अंधकार की पर्वत-श्रेणियां, जो आवाहन दे रही थीं : 'आरोहण करो हम पर!' इतने अचूक, सुंदर, उजियाले, पारदर्शी तुम! केवल यही वरदान मेरे लिए पीछे छोड़ गए?

पहचानते हो वर्द्धमान, मैं चंदना बोल रही हूं? तुम्हारी चंदन मौसी। मौसी तो दूर, अपनी चंदन की भी अब तुम्हें कहां याद होगी। ....दिगंतों पर विहार कर रहे हो। अंतरिक्षों में विचर रहे हो। देह और पदार्थ से लेकर प्राणिमात्र के मन-मनांतरों में समान रूप से गतिमान हो। जड़ और जंगम का भेद भूल कर यकसा सब के आरपार यात्रित हो। ऐसे में मुझे अलग से पहचानने की जरूरत तुम्हें कहां रही? उससे तुम आगे जा चुके। तुम्हारे दर्शन के अनंत विराट् में एक लड़की का क्या मूल्य? सारे ही पुरुषोत्तम हमारी ही गोद से उठकर भी, अंततः हमें बिसार गए। हमें आधी रात शैया में सोती छोड़ जाने में भी वे कभी नहीं हिचके। और फिर लौट कर भी नहीं देखा। तिस पर तुम तो तीर्थंकर होकर जन्मे हो। लोक के आज तक के सारे सूर्यों के अनन्य प्रतिसूर्य। सूर्य को क्या गरज कि वह किसी विशेष को पहचाने। वह तो सब पर समान रूप से चमकता है।

तुम्हारे महाप्रस्थान की सूचना, पूर्व-संध्या में ही वैशाली पहुंच गई थी। सुन कर नसों में बिजलियां कड़क उठी थीं। तनी प्रत्यंचा की तरह प्रतीति हुई थी : 'तुम्हारी हर यात्रा के छोर पर मैं खड़ी हूं। ....ओ दिगंबर! मैं हूं तुम्हारी दिगंबरी, तुम्हारा दिगंबरत्व। तुम्हारी दिग्विजय के दिगंतों को मैंने अपनी कलाइयों पर चूड़ियों की तरह धारण कर रक्खा है।' ....अभिमान आ गया था मन में। नहीं, मैं नहीं आऊंगी तुम्हें विदा देने। मेरी सत्ता के हर पणि-मन में जो खेल रहा है, उसकी विदाई कैसी? सारे लोक-लोकांतरों

को जय करके एक दिन तुम्हीं को लौट आना होगा मेरे पास।

....बड़ी भोर ही कई रथ मां, पिता, भाइयों-भाभियों, अनेक परिजनों को लेकर कुंडपुर को प्रस्थान कर गए। मुझे साथ ले चलने को सारे महलों और उद्यानों के कोने-अंतरे छान डाले गए। पर मेरा पता कोई न पा सका। इंद्रों और माहेंद्रों के सारे स्वर्ग तीर्थंकर के दीक्षा-कल्याणक का उत्सव रचने को, कुंडपुर के प्रांगण में उतरे थे। पर चंदना उसमें कहीं नहीं थी। अपने अंतर-कक्ष की वैभव-शैया को भेद कर, नग्न पृथ्वी से आलिंगित थी वह। अपनी छाती की व्यथा में, गमनागमन की सारी माया को उसने व्यर्थ कर दिया था। ....मुझ से जाकर मुझी तक पहुंचने की इस महायात्रा के यात्रिक का स्वागत करूं या उसे विदा दूं, इसी असमंजस में पड़ी थी। ....अंतर्तम में यह प्रतीति चाहे जितनी ही अटल रही हो, पर देह, प्राण, मन, चेतन, इंद्रियां चूर-चूर होती चली गईं थीं। अपने अस्तित्व की अस्मिता और इयत्ता को पार्थिव में बांधे रखना मेरे वश का नहीं रह गया था।

....मेरे बार-बार बुलाने पर भी तुम कभी वैशाली नहीं आए। आखिर हारकर मैं ही आई थी तुम्हारे पास। उस दिन काया भले ही वहां से लौटी हो, पर मैं फिर उस कक्ष से लौटकर आ नहीं सकी। प्रथम दृष्टिपात में ही जो तुम्हारा स्वरूप देखा, तो विस्मय से अवाक् रह गई। लगा था कि ....रंच भी नया, अपरिचित, अन्य कोई नहीं है यह! स्मृति जागने के दिन से ही मेरे स्वप्न के क्षितिज पर जो अज्ञात अनंग युवा खेल रहा था, वही आंखों आगे साकार हो गया। चक्षुओं का देखना जहां समाप्त हो जाता है, वह अवांग-मनस-गोचर रूप देखा। मेरी हर उमंग और चाह का अचूक उत्तर! ....बहुत तर्क और कसौटी करके भी, अपने से अन्य, भिन्न, प्रतिकूल तुम्हें अणुमात्र भी कहीं से न देख सकी, ना पा सकी।

चलती बेर पूछे बिना न रह सकी थी : 'फिर कब मिलोगे?' उत्तर में तुम समर्पित होकर स्वामी हो उठे थे : 'जब चाहोगी! ....जब पुकारोगी, आऊंगा।' ....एकदम निष्ठुर होकर लौटी थी : नहीं....नहीं चाहूंगी, कभी नहीं पुकारूंगी। मौत सामने आ खड़ी हो, तब भी नहीं। ....आज इस क्षण जहां हूं, वहां से भी नहीं। यमराज को पुकार सकती हूं यहां से, पर तुम्हें नहीं ....तुम्हें हरगिज नहीं। मेरे पैरों की यह बेड़ी और इस तलघर का यह अंधेरा, मुझे तुम से अधिक प्रिय है। क्योंकि यह मेरा अर्जन है, यह मेरा स्वयंवरण है। तुम कौन होते हो मेरे? तुम्हें मेरी आवश्यकता नहीं : तो मुझे भी तुम्हारी आवश्यकता नहीं। मिलन की चाह और पुकार मेरी ही हो, तुम्हारी नहीं? यही तो कहा था, तुमने उस दिन विदा के क्षण में। ....नहीं, तुम्हारी कृपा की मुझे जरूरत नहीं है। ....नहीं, तुम्हारी चाहत की भिखारिणी नहीं हो सकूंगी। तुम्हारी वीतरागता तुम्हें धन्य और मुबारक रहे। आंसू, दूध, खून, व्यथा से भीगी धरती हूं मैं : अनुरागिनी धरित्री, तुम्हारी जनेत्री। जिसकी कोख से तुम जन्मे, जिसकी गोद से तुम उठे, जिसकी छाती खूंद कर तुम वीतरागता के शिखर पर आरूढ़ हुए हो। ....तुम अपने में रहो। मुझे अपने में रहने दो। नहीं, मुझे तुम्हारी कतई जरूरत नहीं है।....

....ठीक लग्न-मुहूर्त आने पर एकाएक तुम वैशाली आए। आर्यावर्त का भावी तीर्थंकर, लिच्छवियों का कुल-सूर्य, अपनी प्रजाओं से मिलने आया था उस दिन। मेरी पुकार पर, मुझसे मिलने तुम नहीं आए। ....नहीं, मैंने तुम्हें पुकारा भी नहीं था। जो अनवरत पुकार भीतर मची थी, उसे यों चुप कर दिया था, जैसे दीए की लौ पर तर्जनी रखकर उसे मसल दिया हो। ....पर यह कैसे छुपाऊं कि वह कुचली हुई लौ, जंगल-जंगल दावाग्नि की तरह फैल गई थी। एक पागल पुकार के सिवाय, और कोई अस्तित्व ही मेरा नहीं रह गया था।

वैशाली के जन-समुद्र पर आरोहण करते, तुम्हारे 'त्रिभुवन-तिलक' रथ में, तुम्हें सिंह-मुद्रा में आरूढ़ देखा। कितने अपरिचित, कितने सुपरिचित, कितने अपने, कितने पराए, कितने पास, कितने दूर तुम एक साथ लगे! ....रोयां-रोयां रोमांच से रो आया। सारी देह कपूर की तरह प्रज्वलित होकर गलती ही चली गई। तुम्हारे युगतीर्थ की महाधारा को प्रत्यक्ष सामने से बहते देखा : उसकी एक अज्ञात तरंग होकर, उसमें चुपचाप विसर्जित हो रही। ....फिर भी रह-रहकर, रथ में तुम्हारे बाएं कक्ष में बैठी दिखाई पड़ रही थी पगली चंदना!

सोचा था, नहीं जाऊंगी संथागार में। नहीं सुनना मुझे तुम्हारा अभिभाषण। क्या नया सुनना है उसमें चंदना को? उसके अणु-अणु में निरंतर ही तो बोल रहे हो। प्रतिपल तुम्हारी अजस्र सरस्वती की निपट-निरीह श्रोता ही तो होकर रह गई हूं। तुम्हें सुनते ही चले जाने की तरस और प्यास का अंत नहीं रहा। ....तो तुम चुप कैसे रह सकते थे। मेरे एकांत का आकाश तुम्हारे सदेह शब्दों से आकुल होकर मुझे छाए रहता। और एक बार देख लेने पर जो रूप मेरी

पुतली बनकर रह गया, उसे अलग से और क्या देखना था। बरौनियों के गवाक्ष-रेलिंग पर खड़ा, वह कौन सदा झांक रहा है? ....पलकों के कपाट मूंदते ही, अंतर-कक्ष की कमल-सेज पर अकेली तो कभी न रही।....

....फिर भी कुछ ऐसा लगा, कि छाती का एक टुकड़ा कटकर सामने आ खड़ा हुआ है। उसकी ऊष्मा को सहे बिना और उसकी धमनी को सुने बिना चैन नहीं। ....संथागार में तुम बोले। श्रवण और दर्शन से परे, मेरी देह मात्र किसी की आग्नेय वाणी होकर रह गई। ....अंतिमेतम् दिया तुमने, कि तुम वैशाली छोड़कर चले जाओगे : तुम हमारे ऊष्मा-भरे, रस-रंग-भरे, संसार की सीमाओं से निष्क्रांत हो जाओगे। तुम इन अप्सरा-कूजित रंगमहलों से मुंह मोड़ जाओगे। अनागार होकर वीरानों में विचरोगे।

तुम्हारे षड्यंत्र और चक्रव्यूह को खूब समझ रही थी। सो उसकी धुरी बनकर प्रस्तुत हो गई थी। ....लेकिन तुम सचमुच ही चले जाओगे, यह तो कल्पना भी न कर सकी थी। ....पर, एक दिन अचानक सुनाई पड़ा : 'वर्द्धमान गृह-त्याग कर गए।' ....एक ठोकर सीधी आकर मेरी छाती पर लगी थी। मानो वह चुनौती वैशाली और लोक के प्रति न होकर, सीधी मेरे ललाट के तिलक पर आकर टकराई थी। बेशक ....क्यों अनिवार्य हो कि मुझे पूछ कर जाओ तुम? मैं होती ही कौन हूं? अनंतों का सम्राट् किसी की अनुमति लेकर नहीं चलता!

संथागार से महालय लौटने को मन मुकर गया। वैशाली के सूर्य ने जिन महलों के ऐश्वर्य में आग लगा दी, उनमें लौटकर क्या करूंगी। और फिर यह भी जानती थी, कि तुम घर आओगे, सब आत्मीय परिजनों से मिलने। तब सामने न आऊं, यह कैसे हो सकता है। ....मेरे बुलाए तो तुम आए नहीं, फिर सामने आने की विवशता मेरी क्यों रहे? ....नहीं, मुझे नहीं मिलना है तुमसे। मेरी गरज की पुकार जब होगी तब देखा जाएगा। तुम्हारे भीतर तो ऐसी कोई पुकार नहीं, कि तुम्हें केवल मेरे पास आना पड़े, या मैं तुम्हारे पास आने को फिर विवश हो जाऊं। तुम्हें मुझ से कुछ पूछना नहीं है, कहना-सुनना नहीं है तो मुझे भी तुम से क्या पूछना है? तुम अपनी मर्जी के मालिक हो। और मैं हूं केवल तुम्हारी मर्जी। फिर देखने-सुनने, मिलने-मिलाने की बात ही कहां उठती है?

महालय को न लौटकर, सीधी आयुधशाला को चली गई थी। अश्वपाल को आदेश दिया था, कि मेरा घोड़ा सज्ज करके प्रस्तुत करे। फिर शस्त्रागार में जाकर योद्धा का वेश धारण किया था। ठोकरें मार-मार कर, दीवारों और आलयों में टंगे, वैशाली के आदि पुरातन महामूल्य शस्त्रास्त्रों का ढेर लगा दिया था। अनंतर कवच और शिरस्त्राण पर, मनमाने कई शस्त्रास्त्र धारण कर लिए थे। और फिर मुक्त केशों को हवा में लहराती, उन्मादिनी की तरह वैशाली के राजमार्गों पर अपना घोड़ा फेंकती चली गई थी। हाथ में सनसनाती नंगी तलवार को सामने के अंतरिक्ष में फेंक कर, अपने घोड़े को उछालकर, उसकी टापों से उसे निर्दलित करती निकल गई थी। एक-एक कर अपने ऊपर धारण किए सारे शस्त्रास्त्रों को राह पर लुटाती चली गई थी।

मेरी नसों में तुम्हारे शब्दों की मांत्रिक बिजलियां लहरा रही थीं। सो शस्त्र मात्र की शक्ति को निरस्त कर देने के उद्वेलन से मैं पागल हो गई थी। ....और देखना चाहती थी तुम्हारी उस अस्मिता और प्रभुता को, जो उस सबेरे वैशाली के जन-जन और आकाश-वातास पर छा गई थी। केशरिया धारण किए, लिच्छवि युवा-युवतियों के दल के दल, नगर के हर राजमार्ग, हट्ट, पण्य, अंतरायण और वीथियों में तुम्हारा प्रशस्तिगान करते, नाचते-कूदते दिखाई पड़ रहे थे। मेरे फेंके शस्त्रास्त्रों को उद्दाम उल्लास के साथ अपने पदाघातों से कुचलते हुए, वे तुम्हारी जयकारों से आकाश थर्राने लगते थे।

....फिर वैशाली के सिंहतोरण पर पहुंचते-पहुंचते मैंने कवच और शिरस्त्राण भी उतार फेंके थे। मेरा केशरिया उत्तरीय भी, थरथराते कुलाचलों जैसे मेरे कंधों पर ठहर नहीं सका था। उन्मुक्त केशावलियों को भेद कर उछलती सुनग्ना छाती को दिशाओं पर फेंकती हुई, मैं सिंहतोरण के पार हो गई थी। तुम्हारे जय-निनादों से आक्रांत उस आकाश और पृथ्वी में क्या असंभव था? तमाम जड़ीभूत मर्यादाएं ध्वस्त होकर उस अंतरिक्ष-मंडल में धूल के बगूलों और घास-फूस की तरह उड़ रही थी। उड्डीयमान प्रभंजन जैसे अपने घोड़े की पीठ पर, कितने भूवलयों और द्युवलयों को पार करती चली गई, पता ही न चल सका। ....अगले दिन सबेरे ही लौटना हो सका था।

....सामने पड़ते ही मां मुझे भुजाओं में भींचकर रो पड़ी थीं। इस अनहोनी बेटी से कैफियत मांगने का साहस तो वे कभी कर नहीं सकी थीं, सो आज भी पूछ न सकीं कि कहां चली गई थी मैं? पर बड़ी कसक और सिसकियों के साथ बताया था उन्होंने कि तुम आए थे और मुझ को पूछ रहे थे। ....कतई तुम्हें कोई अचंभा या शिकायत नहीं

थी, कि मैं क्यों नहीं हूं वहां तुम्हारी प्रतीक्षा में! उलटे समर्थन और साक्षी दी थी तुमने मां के समक्ष, कि मैं जैसी हूं और जो करती हूं वह सब अचूक और ठीक है : चंदनबाला गलत हो नहीं सकती!

....भाग कर, अपने कक्ष में चली गई थी। द्वार बंद कर, धड़ाम से फर्श पर जा गिरी थी। फूट-फूट कर रोती ही चली गई थी। धरती मुझ से अलग तो कहीं रह नहीं गई थी, जो फट कर मुझे समा लेती। फटी केवल अपनी ही छाती, और उसमें समाकर जहां पहुंची, वहां तुम खड़े थे— अविचल और एकाकी, मुस्कराते हुए। ....लोकाकाश का वह तनुवातवलय जिसके आगे सिद्धात्माओं और परमात्माओं की भी गति नहीं। मैं हार गई। मेरी सारी मतियां और गतियां खामोश हो गईं।

× × ×

महाप्रस्थान के बाद के इन दस-ग्यारह बरसों में, कई बार तुम वैशाली आए। आकर जब चले जाते थे, तभी हवा में उदंत सुनाई पड़ता था, महाश्रमण वर्द्धमान यहां आकर चले गए। तुम्हारे बिन चाहे तुम्हें कोई पहचान सके—यह तुमने किसी के हाथ नहीं रखा था। अपनी सत्ता का स्वामी जो हो गया था, वह एक ही रूप की इयत्ता का बंदी होकर कैसे रह सकता था? जिसे कुछ भी छुपाना नहीं था, वह हमारे चर्म-चक्षुओं के देखने-दिखाने में कैसे सिमट सकता था?....

....और फिर तुम्हारे लिए मेरी प्रतीक्षा, वैशाली की सरहदों और राजमार्गों पर कैसे अटक सकती थी? क्योंकि मेरी आंखें तो सदा से तुम्हें क्षितिज के मंडलों पर चलते देखने की अभ्यस्त हो गई थीं। तारों-भरी रातों में तुम्हें अक्सर एक ग्रह से दूसरे ग्रह तक डग-भर चलते देखा था। तब मैं स्वयं भी कहां इस शरीर की सीमा में रह पाती थी?....

फिर यह भी तो मुझ से छुपा नहीं था, कि अपने काल और लोक की विकृतियों के विरुद्ध, एक अप्रतिरुद्ध षड्यंत्री की तरह तुम उठे थे। तुम निरे पृथ्वी-पट के परिव्राजक नहीं, समस्त विश्वप्राण के परिव्राट् होकर विचर रहे थे। तुम वैशाली के राजमार्गों पर नहीं आते थे, अपने सर के बल उसकी कोख के तलातल में धंसते चले जाते थे। तब अपनी कुंवारी कोख में जो फटन की असह्य मधुर पीर अनुभव होती थी, उसी से जान जाती थी कि तुम आए हो। ....तब तन-बदन की सारी सुध-बुध ही चली जाती थी। मूर्च्छा के उस माधुर्य में कब कहां होती थी और क्या करती थी, पता ही नहीं चलता था।

फिर यह भी था, कि तुम्हारे जाने के बाद उन ऐश्वर्य-महलों की छतें, दीवारें और सुख-शैयाएं ही मुझे बैरन हो गईं थीं। कहां रहती थी और क्या करती थी, पूछकर क्या करोगे? और वह जानने का होश ही कहां रह गया था। बलात् जो पहले ही मिलन में, मेरी सारी गतिविधियों का स्वामी हो गया था, उससे अलग मेरी और क्या गतिविधि हो सकती थी?....

× × ×

....बरबस ही आज बालापन की याद आ रही है। देख रही हूं, सोलह बरस की चंदन को। अपने ही मृणाल से उच्छिन्न होकर, दिशाओं के छोरों पर खेलने चली गई वह कमलिनी। अपनी ही पंखुरियों के आलिंगन में न समा सकने वाली वह चंचल लड़की। याद आता है, वैशालीपति की सबसे सुंदर, छोटी और लाड़ली बेटी होने से, सारे आर्यावर्त के आत्मीय राजकुलों का मुझ पर बेहद प्यार था। मुझे लिवा ले जाने को, प्रायः ही मेरी सब दीदियों, मौसियों, बुआओं के राज्यों के रथ आते थे। कई-कई दिन वे महालय के राजद्वारों पर मेरे लिए प्रतीक्षमान रहते थे। मां-पिता, भाई, परिजन सब समझाकर थक जाते थे। पर अपने एकांत कक्ष से हिलने का नाम तक नहीं लेती थी।

फिर, कक्ष में ही कहां टिक पाती थी। कभी रथ लेकर, और कभी घोड़े की पीठ पर चढ़कर जाने कहां-कहां उड़ी फिरती थी। विपुलाचल, वैभार और गृद्धकूट के शिखरों पर खड़ी होकर, राजगृही के रत्न-कुट्टिम प्रासाद-वातायनों को एकटक निहारा करती थी। कल्पना करती थी, चेलना दीदी इन्हीं महालयों के जाने किस अंतर-कक्ष में, जाने क्या कर रही होंगी, जाने किस सोच में डूबी होंगी। खड़े जानू पर चिबुक टिकाए, उदासी में डूबी उनकी मुख-मुद्रा की छाप ही मेरे मन पर सबसे गहरी अंकित थी। उनके कौमार्य के एकांतों में उन्हें प्रायः इसी भंगिमा में देखा था। उस समय उनके पास जाने की हिम्मत नहीं होती थी। कभी जी न माना, तो जाकर पीछे से गलबांही डाल कर, उनकी पीठ पर झूल जाती थी। तब मुझे खींचकर वे गोद में ले लेती थीं, और छाती से चांप कर कितना प्यार करती थीं। मेरे बालों को सहलाती हुई, मुझे चुंबनों से ढांक देती थीं। उनकी भीनी आंखों में बंधे समंदरों के लौटते ज्वारों को मैं देख लेती थी। उनकी आंखों में आंखें डालकर पूछ लेती थी :

'दीदी, ऐसे उदास क्यों हो जाती हो? सच बताना, मेरी शपथ है!'

रुआंसी हंसी के साथ वे खिलखिलाकर कहती थीं :

'पागल कहीं की, मैं क्यों उदास होने लगी? देखती तो है, कितनी हंसी आ रही है मुझे!'

और उनके मुख से हंसियों के फव्वारे फूट पड़ते थे।

सच ही तो कहती थीं दीदी, उन जैसी हंसोड़ और विनोदी प्रकृति तो हमारे घर में किसी की नहीं थी। कारण-अकारण दुरंत, अल्हड़ बालिका की तरह वे शरारत, विनोद और हंसियों में कल्लोल करती रहती थीं। उनकी इन कौतुक-क्रीड़ाओं से सभी तंग आ जाते थे। ....पर उनकी अकारण उदासी के एकांतों का रहस्य मेरे सिवाय कोई नहीं जानता था। इसी से अपने सब परिजनों और दीदियों में, केवल उन्हें ही मैंने अपने अंतरंग के निकटतम पाया था। इसी कारण जिस दिन अभय राजकुमार उनका हरण कर ले गया था, उस दिन मैं अपने कक्ष को बंद करके, कितनी रोई थी, कोई नहीं जान सका था। लगता था, वही तो मेरी अकथ अतंर्वेदना की एकमात्र संगिनी थीं। अद्भुत साम्य था हम दोनों की अंतःप्रकृति में। फरक इतना ही कर सकती हूं, कि वे प्रकट में सबके बीच रस-बस कर चुलबुलापन करती रहती थीं, जबकि मैं अपने एकांतों से ही बाहर नहीं आ पाती थी। हमारे बीच इतना आंतरिक एकत्व होने पर भी, यह कभी संभव न हो सका, कि हम अपने हिए की पीड़ा को होंठों पर लाएं। जिस पीड़ा का कोई प्रकट कारण ही न हो, उसके विषय में क्या बात हो सकती थी? अपनी-अपनी गहराइयों में डूबते-उतराते, उस अबूझता को चुपचाप सहना ही तो होता था।....

....उस दिन जो अभय राजकुमार उन्हें हर ले गए, उसके बाद वे फिर कभी प्रकटतः अपने पीहर न लौट सकीं। साम्राज्य-लोलुप मगधपति ने चेलना को अंकस्थ करके, मानो वैशाली को अपने पैरों तले रौंदने की आत्मतुष्टि महसूस की थी। उनकी साम्राज्य-स्थापना की राह में, अजेय वैशाली ही तो सबसे बड़ा रोड़ा थी। उस वैशाली की सूर्यांशी बेटी को अपनी शैयांगना के रूप में पाकर उनका अहंकार असीम हो उठा था। जब मगध और वैशाली का संघर्ष पराकाष्ठ पर पहुंच रहा था, और विदेहों की मुक्तिवाहिनी भूमि को बलात्कारी मागध अपनी फौलादी पदचापों से थर्रा रहे थे, तब बरसों बाद विवश होकर, पतिदेव की आज्ञा का उल्लंघन कर, गुप्त रूप से दीदी वैशाली आईं थीं। उसमें भी केवल वैशाली की रक्षा का स्वार्थी भाव ही नहीं था, शायद मगधनाथ की कल्याण-कामना ही सर्वोपरि रही हो।

तभी वे सहायता की प्रार्थिनी होकर, तुम्हारे पास भी आईं थीं, मान! पर तुम तो किसी के सगे नहीं थे, अपने तक नहीं। तुमने चेलना मौसी को चोट देने में कोई कसर नहीं रक्खी थी। पर विचित्र हुआ था, कि वे तुम्हारे निकट अपना हृदय हार आईं थीं। उनके होंठों पर एक ही बात थी :

'वर्द्धमान है, तो फिर चिंता किस बात की? वैशाली और मगध की तो बात क्या, सारा जंबूद्वीप उसकी तर्जनी के इशारों पर टंगा हुआ है!'

....सो तो स्वयं ही अपनी आंखों देख आई थी। तुम्हें देख लेने के बाद, कोई सोच शक्य ही नहीं रह गया था।

दीदी के चले जाने के बाद अंतिम रूप से एकाकिनी हो गई थी। तब अपने एकाकीपन को आंखों के सामने सदेह खड़ा देखती थी। लेकिन विचित्र लगता था, कि वह तुम्हीं तो हो। मानो कि, उतनी अकेली हुए बिना, तुम्हें संगी के रूप में नहीं पाया जा सकता!.... ❖

मैं भी कृषक हूं। मेरे पास श्रद्धा का बीज है। उस पर तपश्चर्या की वृष्टि होती है।

प्रज्ञा मेरा हल है। ह्री (पाप करने में लज्जा) की हरिस, मन की जोत और स्मृति की फाल से मैं अपना खेत (जीवन-क्षेत्र) जोतता हूं।

सत्य ही मेरा खुरपा है। मेरा उत्साह ही मेरा बैल है और यह योग-क्षेम मेरा अधिवाहन है। इस हल को मैं निरंतर निर्वाण की दिशा में ही चलाया करता हूं।

मैं यही कृषि करता हूं। इस कृषि से कृषक को अमृत-फल मिलता है और वह समस्त दुखों से मुक्त हो जाता है।

—भगवान बुद्ध

कुंवरनारायण की कविताएं

अनिश्चय

मुझमें फिर एक अनुपस्थिति का शोक है,
और मैं उसमें जिंदा हूं।

एक अकारण शुरुआत और अकारण मृत्यु के बीच
कहां हूं?

मैं कोमल हुआ था यहीं कहीं जैसे एक फूल।
मैं कठोर हो गया हूं जैसे मेरी यादगार का पत्थर।
जड़ता
जैसे अभी आक्रमण करेगी।

अनेक अतीतों और अनेक भविष्यों के बीच
मैंने वर्तमान को कभी-कभी ऐसे भी ठहर जाते देखा है
मानो वह केवल
स्मृतियों में जाग रहा,
एक जन्मसिद्ध समय
जीने से भाग रहा।

कितनी कठिन यातना है
इस तरह अकस्मात् एक जिंदा पल का ठहरे रह जाना
वहीं का वहीं। अव्यतीत। अघटित। अवाक्।
और रोज पैदा होते नए-नए वीरानों का चिल्लाना बेजबान—
बीत, कुछ तो बीत हम पर
जिंदगी या मौत-सा स्पष्ट,
हमको अनिश्चय से चीरते क्षण....बीत....

•

पहले भी आया हूं

जैसे इन जगहों में पहले भी आया हूं
बीता हूं।
जैसे इन महलों में कोई आने को था
मन अपनी मनमानी खुशियां पाने को था।
लगता है
इन बनती-मिटती छायाओं में तड़पा हूं
किया है इंतजार
दी हैं सदियां गुजार
बार-बार
इन खालों जगहों में भर-भर कर रीता हूं
रह-रह पछताया हूं
पहले भी आया हूं
बीता हूं।

•

'कुछ नहीं' वाली पहेली

इसी दिन की तरह हम भी भभक
बुझ जाएंगे चुपचाप,
ज्यों संसार का पल्ला पकड़कर,
आग्रह से झूलता आलोक क्रमशः स्याह पड़ जाता।

किसी अनपढ़ी पुस्तक के समयहत पृष्ठ,
हम नुच जाएंगे, खो जाएंगे, बहती हवाओं में,
इसी दिन की तरह हो जाएंगे हम राख।

खोल दूं यदि बंद है जो मुट्ठियों में
'कुछ नहीं' वाली पहेली,
क्या पकड़ में आ सकेगा
एक मुट्ठी धूल से ज्यादा कहीं कुछ?

अभी तो बूझ लेने का प्रलोभन,
शून्य से भी जूझ लेने का नियोजन,
फिर कभी क्या मिल सकेगा जिंदगी में
जिंदगी से भी बड़ा कुछ? ❖

शीलन

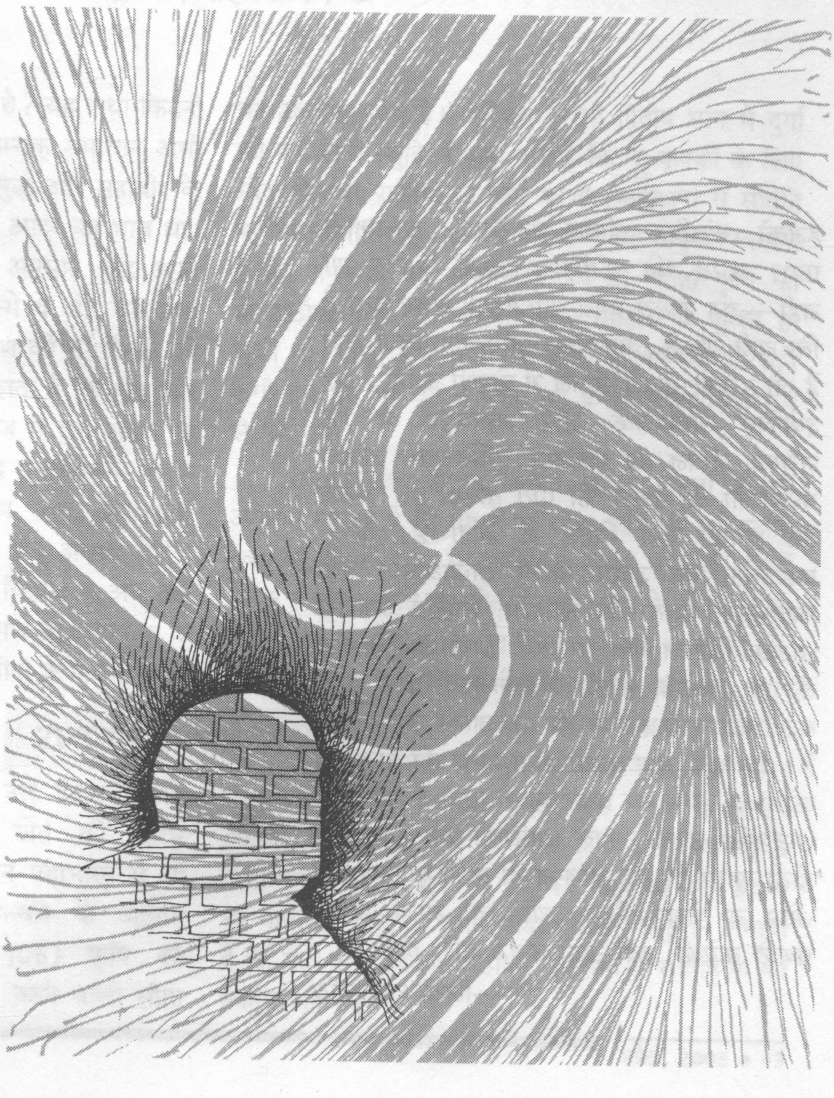

हमको आंतरिक जीवन की स्पष्ट जानकारी प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए या नहीं—इस मुख्य प्रश्न का मैं यह उत्तर देता हूं कि यही सबसे आवश्यक और महत्त्वपूर्ण बात है जो हमको अपने जीवन में करनी चाहिए। यह इसलिए आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है कि मनुष्य-जीवन का एकमात्र युक्तियुक्त उद्देश्य परमात्मा की इच्छा की पूर्ति करना है, जिसने कि हमको इस विश्व में भेजा है। किंतु, परमात्मा की इच्छा किसी असाधारण दैवी चमत्कार, देवता की लेखनी, निर्भ्रांत धर्मग्रंथ अथवा निर्भ्रांत संत या संतों द्वारा नहीं मालूम की जा सकती, बल्कि सब मनुष्यों द्वारा बुद्धि का उपयोग करने से ही वह जानी जा सकती है। वे शब्दों और कार्यों द्वारा सत्य की अनुभूति को एक-दूसरे पर प्रकट करते रहते हैं और यह अनुभूति उनके आगे अधिकाधिक प्रकाशित होती रहती है। यह ज्ञान न तो कभी पूर्ण हुआ है और न होगा, किंतु ज्यों-ज्यों मानव-जाति प्रगति करेगी, त्यों-त्यों उसमें वृद्धि होगी।

—लियो टालस्टॉय

रामायण में जो तीन कथाएँ हैं, उनके नायक क्रमशः राम, रावण और हनुमान हैं और ये तीन चरित तीन संस्कृतियों के प्रतीक हैं जिनका समन्वय और तिरोधान वाल्मीकि ने एक ही काव्य में दिखाया है। संभव है, यह बात सच हो कि 'राम, रावण तथा हनुमान के विषय में पहले स्वतंत्र आख्यान-काव्य प्रचलित थे और इनके संयोग से रामायण काव्य की उत्पत्ति हुई है।' जिस प्रकार, आर्य और आर्येतर जातियों के धार्मिक संस्कारों से शैव धर्म की उत्पत्ति हुई, उसी प्रकार, वैष्णव धर्म की रामाश्रई शाखा में भी आर्येतर जातियों का योगदान है

❑ रामकथा : संस्कृतियों का विराट समन्वय ❑

❑ रामधारीसिंह दिनकर ❑

रामनवमी पर विशेष

राम-कथा का मूल स्रोत क्या है? यह कथा कितनी पुरानी है? इन प्रश्नों का सम्यक् समाधान अभी नहीं हो पाया है। इतना सत्य है कि बुद्ध और महावीर के समय आमजन में राम के प्रति अत्यंत आदर का भाव था। जिसका प्रमाण यह है कि जातकों के अनुसार, बुद्ध अपने पूर्वजन्म में एक बार राम होकर भी जन्मे थे और जैन-ग्रंथों में तिरसठ महापुरुषों में राम और लक्ष्मण की भी गिनती की जाती थी। इससे यह अनुमान भी निकलता है कि बुद्ध और महावीर, दोनों के बहुत पहले से समाज में राम आदृत रहे होंगे। विचित्रता की बात यह है कि वेद रामकथा के अनेक पात्रों का उल्लेख है। इक्ष्वाकु, दशरथ, राम, अश्वपति, कैकेयी, जनक और सीता, इनके नाम वेद अथवा वैदिक साहित्य में अनेक बार आए हैं। किंतु, विद्वानों ने अब तक यह स्वीकार नहीं किया है कि ये नाम, सचमुच, रामकथा के पात्रों के ही नाम हैं। विशेषतः, वैदिक सीता के संबंध में यह समझा जाता है कि यह शब्द लांगलपद्धति (खेत में हल से बनाई हुई रेखा) का पर्याय है। इसीलिए, उसे इंद्रपत्नी और पर्जन्यपत्नी भी कहते थे।[1] सीता खेत की सिरोर (हलरेखा)[2] का नाम था, इसका समर्थन महाभारत से भी होता है, जहां 'द्रोणपर्व के जयद्रथ-वध के अंतर्गत ध्वजवर्णन नामक अध्याय में (7.105) कृषि की अधिष्ठात्री देवी, सब बीजों को उत्पन्न करने वाली सीता का उल्लेख हुआ है।' हरिवंश के भी द्वितीय भाग में दुर्गा की एक लंबी स्तुति में कहा गया है कि 'तू कृषकों के लिए सीता है तथा प्राणियों के लिए धरणी (कर्षुकानां च सीतेति भूतानां धरणीति च)। इस से पंडितों ने यह अनुमान लगाया है कि रामकथा की उत्पत्ति के पूर्व ही, सीता कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में वैदिक साहित्य में पूजित हो चुकी थी। पीछे, जब अयोनिजा सीता की कल्पना की जाने लगी तब उस पर वैदिक सीता का प्रभाव स्वाभाविक रूप से पड़ गया।

रामकथा का उद्‌गम खोजते-खोजते पंडितों ने एक अनुमान लगाया है कि वेद में जो सीता कृषि की अधिष्ठात्री देवी थीं, वे ही बाद में अयोनिजा कन्या बन गईं, जिन्हें जनक ने हल चलाते हुए खेत में पाया। राम के संबंध में इन पंडितों का यह मत है कि वेद में जो इंद्र नाम से पूजित था, वही व्यक्तित्व कालक्रम में विकसित होकर राम बन गया। इंद्र की सबसे बड़ी वीरता यह थी कि उसने वृत्रासुर को पराजित किया था। राम-कथा में यही वृत्रासुर रावण बन गया है। ऋग्वेद (मंडल 1, सूक्त 6) में जो कथा आई है कि पणियों ने गायों को छिपा कर गुफा में बंद कर दिया था और इंद्र ने उन गायों को छुड़ाया, उससे पंडितों ने यह अनुमान लगाया है कि यही कथा विकसित होकर रामकथा में सीताहरण का प्रकरण बन गई।

किंतु, ये सारे अनुमान, अंततः, अनुमान ही हैं और उनसे न तो किसी आधार की पुष्टि होती है, न किसी समस्या का समाधान ही। रामकथा के जिन पात्रों के नाम बेद में मिलते हैं, वे निश्चित रूप से, रामकथा के पात्र हैं या नहीं, इस विषय में संदेह रखते हुए भी, यह मानने में कोई बड़ी बाधा नहीं दीखती कि रामकथा ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। अयोध्या, चित्रकूट, पंचवटी, रामेश्वरम—अनंतकाल से ये स्थान रामकथा से संपृक्त माने जाते रहे हैं। क्या यह इस बात का प्रमाण नहीं है कि दाशरथि राम, सचमुच, जन्मे थे और उनके चरित पर ही वाल्मीकि ने अपनी रामायण बनाई? इस संभावना का खंडन यह कहने से भी नहीं होता कि वाल्मीकि ने आदि-रामायण में केवल अयोध्या कांड से युद्धकांड तक की ही कथा लिखी थी; बालकांड और उत्तर कांड बाद में अन्य कवियों ने मिलाए।

अनेक बार पंडितों ने यह सिद्ध करना चाहा है कि रामायण बुद्ध के बाद रची गई और वह महाभारत से भी बाद की है। किंतु, इससे समस्याओं का समाधान नहीं होता। भारतीय परंपरा, एक स्वर से, वाल्मीकि को आदि कवि मानती आई है और यहां के लोगों का विश्वास है कि रामावतार त्रेता में हुआ था। इस मान्यता की पुष्टि इस बात से होती है कि महाभारत में रामायण की कथा आती है, किंतु, रामायण में महाभारत के किसी भी पात्र का उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार, बौद्ध ग्रंथ तो रामकथा का उल्लेख करते हैं, किंतु, रामायण में बुद्ध का उल्लेख नहीं है। रामायण के एक संस्करण में जाबालिवृत्तांत के अंतर्गत बुद्ध का जो उल्लेख मिलता है (यथा हि चौरः स तथा हि बुद्धः) उसे अनेक पंडितों ने क्षेपक माना है। यह भी कहा जाता है कि सीता के अहिंसा के विरुद्ध भाषण तथा राम के शांत और कोमल स्वभाव की कल्पना के पीछे 'किंचित् बौद्ध प्रभाव' (फादर बुल्के, रामकथा) है। किंतु, यह केवल अनुमान की बात है। अहिंसा की कल्पना बुद्ध से बहुत पहले की चीज है। बुद्ध ने सिर्फ उस पर जोर दिया है। बुद्ध के पहले के हिंदुत्व में ऐसी कोई बात नहीं थी जो रामायण की रचना में बाधक होती। रामायण प्राङ् बौद्ध काव्य है, इस निष्कर्ष से भागा नहीं जा सकता।

रामायण का काल-निर्णय

परंपरा मानती है कि वाल्मीकि और राम समकालीन थे; किंतु, यह समय कब था, इसका ठीक पता नहीं चलता। श्री चिंतामणि वैद्य का मत है कि ऋग्वेद के दशम मंडल में जिस राम का उल्लेख है, वे, वास्तव में, दाशरथि रामचंद्र ही थे। दशम मंडल का रचना-काल अधिकांश पाश्चात्य विद्वानों ने ई. पू. 1500 वर्ष माना है, तिलकजी ने ई. पू. 4000 वर्ष और याकोबी ने भी, लगभग, इतना ही। अतः, वाल्मीकि का समय पाश्चात्यों के अनुसार, ईसा से 1500 वर्ष पूर्व और भारतीयों के अनुसार तीन से चार हजार वर्ष पूर्व माना जाना चाहिए। रामायण में बहुत अधिक क्षेपक हैं और ये क्षेपक भी कब से आ रहे हैं, इसका निश्चय करना कठिन है। इस स्थिति का भी यही समाधान हो सकता है कि रामायण की रचना मूल-रूप में तभी हुई होगी जब कि लिपि का आविष्कार नहीं हुआ था और बहुत काल तक लोग उसे कंठस्थ ही रखते आए होंगे। इसका अर्थ यह है कि रामायण, प्रायः, उन दिनों रची गई होगी जब वेदों की रचना समाप्त हो रही होगी। क्योंकि लिपि का आविष्कार संहिताओं के काल में हुआ था। वैदिक भाषा से रामायण की भाषा में जो भिन्नता दीखती है, उसका कारण, कदाचित्, यह है कि आदि-कवि ने जान-बूझ कर लौकिक संस्कृत की अछूती भाषा-शैली का उपयोग किया और उसी के अनुसार नए ढंग से रचना की। यह भी कि कालक्रम में भाषा में कुछ परिवर्तन भी हुए होंगे। लौकिक संस्कृत किसी वैयाकरण का आविष्कार नहीं कही जा सकती। वैदिक के पार्श्व में लौकिक का पहले से ही अस्तित्व रहा होगा। वाल्मीकि ने पहले-पहल लौकिक संस्कृत में काव्य-रचना की, अतएव, वे संस्कृत भाषा के आदि-कवि माने गए। यह बहुत-कुछ वैसा ही उदाहरण है जैसा विद्यापति का संस्कृत और प्राकृत को छोड़कर मैथिली में लिखना तथा अमीर खुसरो का खड़ी बोली में काव्य आरंभ करना।

बौद्ध और जैन ग्रंथों में राम का जो आदरपूर्वक उल्लेख किया गया है, उसका भी कारण यही होगा कि रामायण के चलते राम तब तक अत्यंत आदरणीय चरित के रूप में प्रख्यात हो चुके होंगे।

बौद्ध कवि कुमारलात (100 ई.) की कल्पना-मंडतिका में सर्वसाधारण में रामायण के वाचन का उल्लेख है। अश्वघोष के बुद्ध-चरित से यह विदित होता है कि वह वाल्मीकि-रामायण से परिचित और प्रभावित था।

दशरथजातक में वाल्मीकि का एक श्लोक पालि रूप में पाया जाता है।

महाभारत के वन-पर्व में जो रामोपाख्यान है, वह वाल्मीकि-रामायण का ही संक्षिप्त रूप है। महाभारत से यह भी सूचित होता है कि उसकी रचना के समय राम ईश्वरत्व प्राप्त कर चुके थे और उनसे संबद्ध स्थान तीर्थ माने जाते थे। शृंगवेरपुर और गोत्पार का उल्लेख इसी रूप में मिलता है।

पाटलिपुत्र को अजातशत्रु ने बसाया था जो, प्रायः, बुद्ध का समकालीन था। किंतु, पाटलिपुत्र का उल्लेख रामायण में नहीं है। अतएव, रामायण बुद्ध से पहले की रचना है।

बुद्ध के समय कोसल का राजा प्रसेनजित् था और उसकी राजधानी श्रावस्ती में थी। लेकिन, रामायण में श्रावस्ती लव की राजधानी बताई गई है। अयोध्या का नाम भी बौद्ध ग्रंथों में साकेत मिलता है। इससे यह अनुमान निकलता है कि रामायण उस समय रची गई, जब अयोध्या उजड़ी नहीं थी, न उसकी राजधानी हटा कर श्रावस्ती ले जाई गई थी, न कोसल-जनपद को साकेत कहने का रिवाज ही चला था।

रामायण में विशाला और मिथिला, इन दो राज्यों के उल्लेख हैं, किंतु बुद्ध के समय केवल वैशाली का अस्तित्व था।

राम-कथा की व्यापकता

रामायण और महाभारत, भारतीय जाति के दो महाकाव्य हैं। महाकाव्यों की रचना तब संभव होती है, जब संस्कृतियों की विशाल धाराएं किसी संगम पर जाकर मिलने वाली होती हैं। भारत में संस्कृति-समन्वय की जो प्रक्रिया चल रही थी, ये दोनों काव्य उसकी अभिव्यक्ति करते हैं। रामायण में इस प्रक्रिया के पहले सोपान हैं और महाभारत में उसके बाद वाले। रामायण की रचना तीन कथाओं को लेकर पूर्ण हुई। पहली कथा तो अयोध्या के राजमहल की है, जो पूर्वी भारत में प्रचलित रही होगी; दूसरी रावण की, जो दक्षिण में प्रचलित रही होगी; और तीसरी किष्किंधा के वानरों की, जो वन्य जातियों में प्रचलित रही होगी। आदि-कवि ने तीनों को जोड़कर रामायण की रचना की। किंतु, उससे भी अधिक संभव यह है कि राम, सचमुच ही, ऐतिहासिक पुरुष थे और, सचमुच ही, उन्होंने किसी वानर-जाति की सहायता से लंका पर विजय पाई थी। हाल से, यह अनुमान भी चला है कि हनुमान नाम एक द्रविड़ शब्द 'आण-मंदि' से निकला है जिसका अर्थ 'नर-कपि' होता है। यहां फिर यह बात उल्लेखनीय हो जाती है कि ऋग्वेद में भी 'वृषाकपि' का नाम आया है। वानरों और राक्षसों के विषय में भी अब यह अनुमान, प्रायः, ग्राह्य हो चला है कि ये लोग प्राचीन विंध्य-प्रदेश और दक्षिण भारत की आदिवासी आर्येतर जातियों के सदस्य थे; या तो उनके मुख वानरों के समान थे, जिससे उनका नाम वानर पड़ गया अथवा उनकी ध्वजाओं पर वानरों और भालुओं के निशान रहे होंगे।

रामायण में जो तीन कथाएँ हैं, उनके नायक, क्रमशः राम, रावण और हनुमान हैं और ये तीन चरित तीन संस्कृतियों के प्रतीक हैं जिनका समन्वय और तिरोधान वाल्मीकि ने एक ही काव्य में दिखाया है। संभव है, यह बात सच हो कि 'राम, रावण तथा हनुमान के विषय में पहले स्वतंत्र आख्यान-काव्य प्रचलित थे और इनके संयोग से रामायण काव्य की उत्पत्ति हुई है।' जिस प्रकार, आर्य और आर्येतर जातियों के धार्मिक संस्कारों से शैव धर्म की उत्पत्ति हुई, उसी प्रकार, वैष्णव धर्म की रामाश्रई शाखा में भी आर्येतर जातियों का योगदान है।

रामावतार

कृष्णाश्रई वैष्णव धर्म की विशेषता यह थी कि उसमें कृष्ण विष्णु पहले माने गए, उनके संबंध की कथाओं का विस्तृत विकास बाद में हुआ। राम-मत के विषय में मुख्य बात यह है कि रामकथा का विकास और प्रसार पहले हुआ, राम विष्णु का अवतार बाद में माने गए। भंडारकर साहब ने तो यहां तक घोषणा कर दी थी कि विष्णु के अवतार के रूप में राम का ग्रहण ग्यारहवीं सदी में आकर हुआ। किंतु, अब यह मत खंडित हो गया है। अब अधिक विद्वान यह मानते हैं कि ईसा से तीन सौ वर्ष पूर्व वासुदेव-कृष्ण विष्णु के अवतार माने जाने लगे थे। और उनके अवतार होने की बात चलने के बाद, बाकी अवतार भी विष्णु के ही अवतार माने जाने लगे; तथा उन्हीं दिनों राम का अवतार होना भी प्रचलित हो गया। वैसे, अवतारवाद की भावना ब्राह्मण-ग्रंथों में ही उदित हुई थी। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि प्रजापति ने (विष्णु ने नहीं) मत्स्य, कूर्म

और वराह का अवतार लिया था। तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी प्रजापति के वराह रूप धरने की कथा है। बाद में, जब विष्णु की श्रेष्ठता सिद्ध हो गई तब मत्स्य, कूर्म और वराह, ये सभी अवतार उन्हीं के माने जाने लगे। केवल वामनावतार के संबंध में यह कहा जाता है कि वामन आरंभ से ही विष्णु के अवतार माने जाते रहे हैं। वामन के त्रिविक्रम रूप का उल्लेख ऋग्वेद के प्रथम मंडल, द्वितीय अध्याय के बारहवें सूक्त में है।

रामकथा के विकास पर रेवरेंड फादर कामिल बुल्के ने जो विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ प्रकाशित किया है, उसके अनुसार वेद में रामकथा-विषयक पात्रों के सारे उल्लेख स्फुट और स्वतंत्र हैं। रामकथा-संबंधी आख्यान-काव्यों की वास्तविक रचना वैदिक काल के बाद, इक्ष्वाकु-वंश के राजाओं के सूतों ने आरंभ की। इन्हीं आख्यान-काव्यों के आधार पर वाल्मीकि ने आदि-रामायण की रचना की। इस रामायण में अयोध्याकांड से लेकर युद्धकांड तक की ही कथावस्तु का वर्णन था और उसमें सिर्फ बारह हजार श्लोक थे। किंतु, इस रामायण का समाज में बहुत प्रचार था। कुशीलव उसका गान करके और अभिनेता उसका अभिनय दिखाकर अपनी जीविका कमाते थे। 'काव्योपजीवी कुशीलव अपने श्रोताओं की रुचि का ध्यान रखकर रामायण के लोकप्रिय अंश को बढ़ाते भी थे।' इस प्रकार, आदि-रामायण का कलेवर बढ़ने लगा। ज्यों-ज्यों रामकथा का यह मूल-रूप लोकप्रिय होता गया, त्यों-त्यों जनता को यह जिज्ञासा होने लगी कि राम कैसे जन्मे? सीता कैसे जन्मी? रावण कौन था? आदि-आदि। इसी जिज्ञासा की शांति के लिए बालकांड और उत्तरकांड रचे गए। इस प्रकार, राम की कथा 'रामायण' (राम-अयन अर्थात् राम का पर्यटन) नहीं रहकर पूर्ण रामचरित के रूप में विकसित हुई। इस समय तक रामायण नरकाव्य ही रहा और राम आदर्श क्षत्रिय के रूप में भारतीय जनसाधारण के सामने प्रस्तुत किए गए। इसका आभास भगवद्गीता के उस स्थल से मिलता है, जहां कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि शस्त्र धारण करने वालों में मैं राम हूं—रामः शस्त्रभृतामहम्।

रामचरित ज्यों-ज्यों लोकप्रिय होता गया, त्यों-त्यों उसमें अलौकिकता भी आती गई। अंततः, ईसा के सौ वर्ष पूर्व तक आकर राम निश्चित रूप से विष्णु के एक अवतार हो गए। किंतु, यह कोई निश्चयात्मक बात नहीं है। क्योंकि राम की बोधिसत्त्व के रूप में कल्पना ई. पू. प्रथम शती के पूर्व ही की जा चुकी थी। इसलिए, संभव है, अवतार भी वे पहले से ही माने जाते रहे हों।

किंतु, बाद के साहित्य में तो राम की महिमा अत्यंत प्रखर हो उठी तथा उत्तर और दक्षिण भारतवर्ष की संस्कृति दिनों-दिन राममई होती चली गई। बौद्ध और जैन साहित्य को छोड़कर और सभी भारतीय साहित्य में राम विष्णु के अवतार के रूप में सामने आते हैं। हां, बौद्ध धर्म के साथ रामकथा का जो रूप भारत से बाहर पहुंचा, उसमें वे विष्णु के अवतार नहीं रहे, न उनके प्रति भक्ति का ही कोई भाव रहा।

राम को लेकर समन्वय

भारत में संस्कृतियों का जो विराट समन्वय हुआ है, रामकथा उसका अत्यंत उज्ज्वल प्रतीक है। सबसे पहले तो यह बात है कि इस कथा से भारत की भौगोलिक एकता ध्वनित होती है। एक ही कथासूत्र में अयोध्या, किष्किंधा और लंका, तीनों के बंध जाने के कारण, सारा देश एक दीखता है। दूसरे, इस कथा पर भारत की सभी प्रमुख भाषाओं में रामायणों की रचना हुई जिनमें से प्रत्येक अपने-अपने क्षेत्र में अत्यंत लोकप्रिय रही है तथा जिनके प्रचार के कारण भारतीय संस्कृति की एकरूपता में वृद्धि हुई है। संस्कृत के धार्मिक साहित्य में रामकथा का स्थान, अपेक्षाकृत, कम व्यापक रहा, फिर भी, रघुवंश, भट्टिकाव्य, महावीर-चरित, उत्तर रामचरित, प्रतिमा नाटक, जानकीहरण, कुंदमाला, अनर्घराघव, बालरामायण, हनुमन्नाटक, अध्यात्म-रामायण, अद्भुत रामायण, आनंद-रामायण आदि अनेक काव्य इस बात के प्रमाण हैं कि भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों के कवियों पर वाल्मीकि-रामायण का कितना गंभीर प्रभाव पड़ा था। जब देश-भाषाओं का काल आया, तब देश-भाषाओं में भी रामचरित पर एक से एक उत्तम काव्य लिखे गए और आदिकवि के काव्यसरोवर का जल पीकर भारत की सभी भाषाओं ने अपने को पुष्ट किया। 'कंबन-कृत तमिल रामायण (10वीं श. ई.), तेलगू द्विपाद रामायण (12वीं श. ई.), मलयालम रामचरितम् (14वीं श. ई.) कन्नड़ी तोरावे रामायण (16वीं श. ई.), बंगला कृत्तिवासी रामायण (15वीं श. ई.), हिंदी रामचरितमानस (16वीं श. ई.), उड़िया बलरामदास रामायण (15वीं श. ई.), और

शेष पृष्ठ 55 पर

उनका संयम-अभ्यास सुबह से शाम तक जीवन के हर क्रम के साथ जुड़ा हुआ है। हाथ-मुंह धोने के लिए उपयोग में आने वाले पानी से लेकर जमीन-जायदाद तक के सभी संदर्भ इसमें समाविष्ट हो जाते हैं। व्यक्ति संयम से एक-एक वस्तु का सदुपयोग करे तो इससे न केवल आम समस्याओं का ही समाधान होगा, अपितु जीवन की अनेक छोटी-बड़ी जटिलताएं स्वतः समाहित हो जाएंगी। सादगी अनवछिन्न रूप से जन-जन के जीवन के साथ जुड़ जाएगी। कहा जाए तो संयम व सादगी एक सिक्के के दो पहलू की तरह ही तो हैं

❑ महावीर की त्रिविध जीवन-शैली ❑

❑ साध्वी निर्वाणश्री ❑

मानव संस्कृति के विकास का इतिहास करोड़ों-करोड़ों वर्ष पुराना है। इस इतिहास की सर्जना में विभिन्न धर्म-दर्शनों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जैन धर्म विश्व का एक प्राचीन एवं वैज्ञानिक धर्म है। इस धर्म के प्रवर्तकों-तीर्थंकरों ने मानव एवं प्रकृति की परस्परता को सदा अपने चिंतन का विषय बनाया। उनके अनुसार मानव सृष्टि का विकास एवं विस्तार तब ही संभव हो पाता है जब जल, अग्नि, वनस्पति आदि अस्तित्व में आते हैं। उनके अस्तित्व के बिना प्राणीमात्र के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। दूसरे शब्दों में कहें तो ये सबके जीवन के आधार तत्त्व हैं।

जैन परंपरा के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर ने त्रस जीवों की तरह पृथ्वी, पानी आदि स्थावर निकाय में जीवत्व का प्रतिपादन किया। वे स्थावरकाय पांच हैं—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय। भगवान महावीर अपने समय के प्रथम दार्शनिक-चिंतक थे जिन्होंने पृथ्वी, पानी आदि में जीवत्व को स्वीकार किया। उन्होंने कहा—जो पृथ्वी, पानी आदि के अस्तित्व का अपलाप करता है, वह अपने अस्तित्व का अपलाप करता है। स्थावर जीव भी त्रस जीवों की भांति सुख-दुख का संवेदन करते हैं, पर वे उसे अभिव्यक्त करने में वैसे ही असमर्थ हैं जैसे जन्मना मूक व्यक्ति।

महावीर जयंती पर विशेष

भगवान महावीर ने साधु एवं गृहस्थ के लिए जिस आचार-संहिता का प्रतिपादन किया, उसमें अहिंसा की प्रधानता है। मुनि यावज्जीवन के लिए हिंसा का परित्याग करते हैं। वे अपनी ओर से किसी सूक्ष्म-स्थूल, त्रस-स्थावर प्राणी को मन, वचन एवं शारीरिक क्रिया से कष्ट नहीं देते। अहिंसा महाव्रत को वरीयता देते हुए उन्होंने अवशिष्ट सत्य, अचौर्य आदि महाव्रतों का समावेश उसमें किया। अहिंसा महाव्रत की सिद्धता की स्थिति में ये सब स्वतः सिद्ध हो जाते हैं।

गृहस्थ की आचार संहिता के प्रथम अणुव्रत—अहिंसा अणुव्रत में उन्होंने निरपराध त्रस प्राणियों की हिंसा से सर्वथा उपरत रहने एवं स्थावर जीवों की अनावश्यक हिंसा से बचने की प्रेरणा दी। संयम के संस्कार को विशेष रूप से परिपुष्ट करने के लिए इच्छापरिमाण, भोगोपभोगविरति, अनर्थदंडविरति आदि की विस्तृत विवेचना की। सामायिक, पोषधोपवास आदि व्रत भी इसी उद्देश्य की संपूर्ति में हेतुभूत हैं।

त्रिविध जीवन-शैली की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा—वह जीवन-शैली श्रेष्ठ है जिसमें अल्प आरंभ (हिंसा) और अल्प परिग्रह है। वह जीवन-शैली अग्राह्य है जिसमें अत्यधिक हिंसा और अत्यधिक परिग्रह है। मगध साम्राज्य में उन्होंने श्रावक पूनिया के जीवन को श्रेष्ठ

बताया क्योंकि हिंसा और परिग्रह दोनों ही श्रावक पूनिया के जीवन में स्वल्प थे। वह अत्यंत संतोषी वृत्तिवाला व्यक्ति था। मात्र रूई की पूनियां कातकर अपना जीवनयापन करता था। जिसके जीवन में जितना अधिक असंतोष होता है, वह उतना ही अधिक हिंसा में लिप्त रहता है। हिंसा और परिग्रह दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

उपासकदशासूत्र में आनंद, कामदेव आदि श्रावकों के जीवन को सराहा गया, आदर्श रूप में परिगणित किया गया क्योंकि विपुल भोग-सामग्री के मध्य भी उनके व्यक्तिगत जीवन में काफी संयम था। वे इन मनोरथों का सतत चिंतन करते रहे थे—

कब मैं अल्पमूल्य एवं बहुमूल्य परिग्रह का परित्याग करूंगा।

कब मैं मुंड हो, गृहस्थपन छोड़ साधुपन स्वीकार करूंगा।

आर्थिक विकास एवं औद्योगिकीकरण के इस युग में पर्यावरण के समक्ष एक खतरा नजर आ रहा है। उपभोक्तावाद की बाढ़ के चलते खनिज भंडार खाली होने के कगार पर हैं। वनों की अंधाधुंध कटाई हो रही है। रासायनिक पदार्थों के बढ़ते दबाव के कारण हवा, पानी प्रदूषित हो रहे हैं। पेट्रोल, डीजल आदि के अधिकाधिक प्रयोग के कारण वातावरण में जहरीली गैसों की मात्रा निरंतर बढ़ती जा रही है। परमाणु संयंत्रों द्वारा उत्सर्जित रेडियो विकिरण एवं प्रतिदिन उपयोग में आने वाली वस्तुओं—एयरकंडीशनर, रेफ्रीजिरेटर आदि द्वारा उत्सर्जित विकिरणों से धरती की सुरक्षा-छतरी 'ओजोन' परत निरंतर क्षतिग्रस्त होती जा रही है।

उपभोक्तावाद की इस बाढ़ ने गांवों की अपेक्षा शहरों में जीवन को और दुभर बना दिया है। ऑक्सीजन की भारी कमी एवं वातावरणजनित कोलाहल ने अनेक गंभीर शारीरिक एवं मानसिक समस्याओं को पैदा किया है। नदियां ही नहीं, महानदियों का पानी भी प्रदूषित हो गया है। विज्ञापन के रथ पर आरूढ़ उपभोक्तावाद की इस बाढ़ में मनुष्य की लालसाओं का कहीं कोई ओर-छोर नहीं है। छोटी-से-छोटी वस्तु के सैकड़ों मॉडल आज बाजार में उतार दिए गए हैं। विज्ञापन की यह चकाचौंध मनुष्य की आंखों को भले तृप्त करे, पर मन में निरंतर अतृप्ति की मृगमरीचिका जगी रहती है। एक-एक व्यक्ति के पास किसी समय में साधारण उपयोग की वस्तुएं जहां सीमित संख्या में थीं, वहां अब उनकी संख्या दर्जनों तक पहुंच गई है।

भटकाने वाली, थकाने वाली इस दुश्यात्रा से लौटने का एक ही उपाय है कि व्यक्ति अपने जीवन में संयम को प्रतिष्ठित करे। पर्यावरण के प्रति उसका दृष्टिकोण सम्यक् हो। पृथ्वी, पानी आदि पर्यावरणीय तत्त्वों की सुरक्षा में ही उसकी अपनी सुरक्षा सन्निहित है। इस सत्य का साक्षात्कार व्यक्ति अनुभव की आंख से करे। एक बार का अनुभव हजार उपदेशों से अधिक कार्यकारी होता है।

भगवान महावीर ने जीव-संयम की तरह अजीव-संयम पर भी उतना ही बल दिया। उनकी दृष्टि में अजीव का असंयम/अपव्यय पर्यावरण को प्रदूषित करता है। गहराई में उतर कर देखा जाए तो एक सीमा में पहुंचने पर अजीव भी जीव से जुड़ जाता है। सभी अजीव पदार्थ जीव के ही व्यक्त शरीर हैं। 'काम में लो और फेंको' की बढ़ती जा रही संस्कृति में भगवान महावीर के संयम का स्वर ही इस जैव मंडल को बचाने वाला है। उन्होंने कुछ घंटे अथवा दिनों के लिए नहीं, अपितु हमेशा के लिए स्वयं को संयम से अनुप्राणित करने पर विशेष बल दिया।

उनका संयम-अभ्यास सुबह से शाम तक जीवन के हर क्रम के साथ जुड़ा हुआ है। हाथ-मुंह धोने के लिए उपयोग में आने वाले पानी से लेकर जमीन-जायदाद तक के सभी संदर्भ इसमें समाविष्ट हो जाते हैं। व्यक्ति संयम से एक-एक वस्तु का सदुपयोग करे तो इससे न केवल आम समस्याओं का ही समाधान होगा, अपितु जीवन की अनेक छोटी-बड़ी जटिलताएं स्वतः समाहित हो जाएंगी। सादगी अनवछिन्न रूप से जन-जन के जीवन के साथ जुड़ जाएगी। कहा जाए तो संयम व सादगी एक सिक्के के दो पहलू की तरह ही तो हैं।

जीवन के हर पक्ष के लिए संयम का शंखनाद कर जहां एक ओर भगवान महावीर ने पर्यावरण की समस्या का समाधान किया, वहीं स्वयं के सुखी और संतुष्ट होने का नुस्खा भी मानव जाति के हाथ में थमाया। वही व्यक्ति सुखी होता है जो दूसरों को कम-से-कम तकलीफ देता है। दूसरों को दुखी करना प्रकारांतर से स्वयं को दुखी बनाने का आमंत्रण है। आत्मतुला के इस निकष पर उन्होंने संयम के स्वर्ण को परखा। यह परख वर्तमान और भविष्य दोनों को एक साथ अभिमंडित करने वाली है। जीवन की सच्ची आभा और सुवास है। ❖

घर आकर उसने एक बड़ा चार्ट पेपर, रंग और रबड़-पेंसिल निकाली और उन्हें लेकर बाल्कनी में बैठ गई। उसने काम शुरू करने के लिए चार्ट पेपर फैलाया ही था कि दो चिड़ियां बाल्कनी की रेलिंग पर आकर बैठ गईं। धृति फौरन उठी और रसोईघर से चावल ले आई, तब तक चिड़ियां कुछ दूर जाकर बैठ गईं। धृति ने चावलों को मुंडेर पर फैला दिया, ताकि चिड़ियां आकर खा सकें। वापस आकर उसने चार्ट पेपर पर पेंसिल से चारों तरफ लाइनें खींचीं। तभी नीचे सड़क से किसी के चीखने और भागने-दौड़ने की आवाजें सुनाई दी। धृति ने बाल्कनी से झांककर नीचे देखा—दो बैल तेजी से दौड़ते हुए जा रहे हैं तथा उनकी टक्कर लगने से वही बूढ़ी औरत सड़क पर गिरी पड़ी है। धृति छलांग लगाती हुई तेजी से सीढ़ियों से नीचे उतरी। बूढ़ी के पास पहुंचकर उसने हांफते हुए पूछा—'क्या हुआ?'

❑ दादीमां ❑

❑ इंदिरा अनंतकृष्णन ❑

बालकथा

'धृति, खड़ी हो जाओ! क्या यही तुम्हारा काम है? मुझे तुमसे यह उम्मीद नहीं थी। मैंने तुम्हें 'दादीमां' या 'नानीमां' पर निबंध लिखने को कहा था न!'

धृति ने धीरे-धीरे अपनी सीट से खड़े होकर गरदन हिलाई।

'फिर कहां है तुम्हारा निबंध?' टीचर ने खाली कापी हिलाते हुए कहा—'जवाब दो, क्यों नहीं लिखा तुमने निबंध.... क्या तुम्हारे पास पेन नहीं था?'

धृति ने दाएं से बाएं गरदन हिलाई।

'तो क्या तुम बीमार थीं?'

'नहीं,' धृति ने सिर झुकाए-झुकाए ही जवाब दिया।

'फिर क्या बात थी जो तुमने निबंध नहीं लिखा?'

'जी, इसलिए....इसलिए कि मेरी कोई दादी या नानी नहीं है।'

धृति का यह जवाब सुनकर उसकी कक्षा की लड़कियों में से कुछ खुसरफुसर करने लगीं और कुछ मुंह पर हाथ रखकर मुस्कराने लगीं।

उसके साथ की सीट पर बैठी वैशाली ने देखा कि धृति की आंखों में आंसू आ गए हैं। तभी स्कूल की छुट्टी की घंटी बज गई। टीचर के जाते ही लड़कियां कक्षा से निकलने लगीं। सभी को अपने-अपने घर जाने की जल्दी थी। सभी अपनी-अपनी सहेलियों के साथ बातें करती और हंसती हुई जाने लगीं। धृति सबसे आखिर में कक्षा से निकली।

वैशाली उसके साथ थी। बरामदे में धृति को टीचर फिर मिल गई। धृति उनसे आंख नहीं मिला पा रही थी। टीचर ने धृति को अपने पास बुलाया। उसके कंधे पर हाथ रखकर प्यार से कहा—'तुम तो बहुत अच्छी बच्ची हो। मुझे बहुत खुशी है कि तुमने कोई बहाना नहीं बनाया। तुम्हारी दादी या नानी नहीं है, यह मुझे पता नहीं था। तुम 'मेरी आंटी' शीर्षक से निबंध लिख लेना। मुझे उम्मीद है कि तुम शनिवार और

रविवार—इन दो दिनों में अच्छा निबंध लिख लोगी।'

आंसू से भीगे धृति के चेहरे पर मुस्कराहट आ गई। उसने खुश होकर कहा—'थैंक्यू मैडम, 'मेरी आंटी' पर मैं अच्छा-सा निबंध जरूर लिख लाऊंगी।'

वैशाली के साथ धृति घर की ओर चल दी। अब धृति के लिए निबंध की परेशानी तो दूर हो गई। परंतु उसके मन में यह इच्छा जरूर पैदा हो गई कि काश! उसकी भी नानी या दादीमां होती।

वैशाली की दादी और नानी दोनों हैं। और तो और, उसकी परदादी भी हैं। वैशाली को बहुत प्यार करती हैं। इसीलिए वैशाली खुश रहती है। मन लगाकर पढ़ती है। जिससे उसके नंबर भी क्लास में सबसे अधिक आते हैं।

वैशाली धृति को बताती रहती है कि उसकी दादी उसका बहुत खयाल रखती हैं। उसके साथ तरह-तरह के खेल भी खेलती हैं। रोज रात को सोते समय नई-नई कहानियां सुनाती हैं। उनकी कहानियों में परियां, राजा-रानी सभी होते हैं। छुट्टियों में तो उसके और भी मजे हो जाते हैं, क्योंकि तब उसकी नानीजी भी आ जाती हैं। नानीजी उसके लिए ढेर-से कपड़े और खाने-पीने की चीजें लाती हैं। वैसे तो उसकी परदादी काफी बूढ़ी हैं, इसलिए वह अच्छी तरह सुन नहीं सकती हैं, पर आंखें अब भी तेज हैं। कपड़ों पर कढ़ाई खूब सुंदर करती हैं। इसीलिए तो उसके कपड़े सुंदर और नए-नए डिजाइन के होते हैं।

वैशाली के लिए तो दो-दो दादियों और नानी के साथ रहना साधारण-सी बात थी, लेकिन धृति के लिए नहीं। क्योंकि उसकी दादी और नानी—दोनों में से कोई भी तो नहीं थी।

धृति ने स्कूल से लौटते समय वैशाली से कहा—'मैं अपनी गुल्लक के सारे पैसे निकालकर एक दादीमां खरीद लाऊंगी।'

'कैसी बेवकूफ हो तुम!' वैशाली ने कहा, 'क्या दादीमां भी खरीदने की चीज है? दादीमां कोई बाजार में थोड़े ही मिलती है।'

कुछ दूर चलकर वैशाली ने सड़क पार कर ली। दोनों का घर आमने-सामने की कॉलोनियों में था। बस एक सड़क बीच में थी।

घर जाकर भी धृति के मन में दादीमां खरीद लाने की बात आती रही। वह यह नहीं जानती थी कि दादीमां कहां से और कैसे खरीदी जा सकती है।

अगले दिन सुबह धृति के पिताजी उसकी मां से मकान खरीदने की बात कर रहे थे। वह अखबार में छपे एक विज्ञापन को पढ़कर उसकी मां को सुना रहे थे। विज्ञापन में लिखा था कि तीन कमरों का एक मकान बिकाऊ है।

तभी धृति के मन में विचार आया कि क्यों न मैं भी अखबार पढ़कर देखूं, शायद उसमें 'दादीमां' का विज्ञापन भी छपा हो। उसने पिछले कई दिनों के अखबार उठाए और ऊपर छत पर जाकर बैठ गई। घंटों वह अखबार के विज्ञापन बड़े ध्यान से पढ़ती रही। अखबारों में फर्नीचर, कार, दूल्हा-दुल्हन, मकान-दुकान आदि के न जाने कितने विज्ञापन थे, परंतु दादीमां का कोई विज्ञापन नहीं था।

धृति निराश हो गई। उसने अखबारों को संभालकर एक तरफ सरका दिया और नीचे आ गई। उसका मन बड़ा बेचैन था, उसने सोचा कि वैशाली के घर जाकर लूडो खेल लूं। मां से कहकर वह तेजी से वैशाली के घर के लिए चल दी। फुटपाथ पर वह तेज-तेज कदमों से जा ही रही थी कि एक बूढ़ी औरत से टकरा गई। उस बूढ़ी औरत के हाथ में चावल के आटे से भरा कागज का लिफाफा था, जो टकराने से गिरकर फट गया और सारा आटा बिखर गया।

बूढ़ी औरत ने धृति को देखा और बोली, 'ऐसी भी क्या जल्दी है बेटी! देखो, तुमने यह सब गिरा दिया न!'

धृति घबराकर खड़ी हो गई और बोली, 'मुझे माफ कर दीजिए, गलती हो गई।'

बूढ़ी औरत उसका भोला-भाला चेहरा देख मुस्करा दी। बोली, 'चलो, जाने दो। आगे से ध्यान रखना। सड़क पर सावधानी से चलना चाहिए।'

'पर यह था क्या?' धृति ने जिज्ञासावश पूछा।

'यह चावल का आटा था। मैं इसे चींटियों को खिलाने ले जा रही थी।' बूढ़ी औरत ने बताया।

'क्यों? चींटियां तो सुबह ही अपना-अपना खाना ढूंढ़ने चली जाती हैं।'

'हां बेटी, पर हम लोगों का फर्ज है कि हम इन छोटे-छोटे जीव-जंतुओं को खाने को दें। हम इन जीव-जंतुओं पर दया करेंगे तभी तो भगवान हम पर दया करेंगे!'

'वैसे आपको छड़ी लेकर चलना चाहिए जिससे आपको चलने में परेशानी न हो।' धृति ने कहा।

'बूढ़ी हो गई हूं न बेटी, इसलिए कई बार भूल जाती हूं!'

तभी दो नटखट-से लड़के फुटपाथ से गुजरे। वे आपस में एक-दूसरे को धक्का दे रहे थे। उनमें से एक लड़का धृति से टकराकर गिर गया। धृति को गुस्सा आ गया। उसने उसे डांटते हुए कहा, 'कैसे बदतमीज हो तुम! रास्ते में ठीक से चलना भी नहीं आता?'

रास्ते में गिर पड़े लड़के पर बूढ़ी औरत को दया आ गई। उसने उसे उठाया, प्यार से थपथपाया और पूछा, 'तुम्हें कहीं चोट तो नहीं लगी?' फिर धृति से कहा—'देखो बेटी, गुस्सा नहीं करते। अब तुम जाओ! हां, ध्यान से जाना!'

उस रात धृति को सपने में वही बूढ़ी औरत दिखाई दी। धृति ने देखा उसके कंधों पर सफेद पर लगे हुए हैं और साथ में सुंदर-सुंदर चिड़ियां, चींटियां और बच्चे हैं। वे सभी उस परी बनी बूढ़ी औरत के साथ थे और बूढ़ी भी उन सबको प्यार कर रही थी।

अगले दिन धृति वैशाली के साथ खेल रही थी। खेलते-खेलते धृति को वैशाली की कॉलोनी के सामुदायिक भवन पर लगा नोटिस बोर्ड दिखाई दिया। उस पर बहुत-से कागज चिपके हुए थे। धृति के पूछने पर वैशाली ने बताया—'हम सबको जब कुछ कहना होता है तो हम लिखकर यहां चिपका देते हैं। जैसे कि 'मेरे घर में भजन-कीर्तन का कार्यक्रम है।' लिखकर यहां चिपका देते हैं, ताकि इसे सभी लोग पढ़ लें और जो आना चाहें, वे आ जाएं।'

'तो क्या मैं यहां 'दादीमां चाहिए' लिखकर चिपका सकती हूं?' धृति ने पूछा।

'हां, हां, क्यों नहीं? लेकिन तुम बड़े-बड़े शब्दों में लिखना ताकि बड़े-बूढ़े लोग भी उसे ठीक से पढ़ सकें।'

धृति ने कहा—'ठीक है वैशाली, मैं ऐसा ही करूंगी।'

घर आकर उसने एक बड़ा चार्ट पेपर, रंग और रबड़-पेंसिल निकाली और उन्हें लेकर बाल्कनी में बैठ गई। उसने काम शुरू करने के लिए चार्ट पेपर फैलाया ही था कि दो चिड़ियां बाल्कनी की रेलिंग पर आकर बैठ गईं। धृति फौरन उठी और रसोईघर से चावल ले आई, तब तक चिड़ियां कुछ दूर जाकर बैठ गईं। धृति ने चावलों को मुंडेर पर फैला दिया, ताकि चिड़ियां आकर खा सकें। वापस आकर उसने चार्ट पेपर पर पेंसिल से चारों तरफ लाइनें खींचीं। तभी नीचे सड़क से किसी के चीखने और भागने-दौड़ने की आवाजें सुनाईं दी। धृति ने बाल्कनी से झांककर नीचे देखा—दो बैल तेजी से दौड़ते हुए जा रहे हैं तथा उनकी टक्कर लगने से वही बूढ़ी औरत सड़क पर गिरी पड़ी है। धृति छलांग लगाती हुई तेजी से सीढ़ियों से नीचे उतरी। बूढ़ी के पास पहुंचकर उसने हांफते हुए पूछा—'क्या हुआ?'

बूढ़ी औरत फुटपाथ पर मुंह के बल गिरी हुई थी। उसकी छड़ी उछलकर दूसरी तरफ जा गिरी थी। धृति ने उसे किसी तरह उठाकर बैठाया। देखा कि उसके पांव में काफी चोट आई है। पांव की एड़ी फट गई है, जिससे खून बह रहा है।

'कहीं आपको बैलों ने सींगों से मारा तो नहीं?'

'नहीं बेटी,' वह कराहते हुए बोली, 'मैं तो इनसे बचने के लिए एक तरफ हो रही थी कि उनमें से एक के खुर से मेरा पंजा कुचल गया और मैं गिर गई। उफ्! कितना दर्द हो रहा है।'

धृति ने उसकी छड़ी लाकर पकड़ा दी। सहारा देकर उसे उठाया और बोली, 'धीरे-धीरे चलने की कोशिश करो अम्मा!' और उसे संभालकर घर ले आई। रविवार का दिन था। धृति के पिताजी घर पर ही थे। उन्होंने फोन करके डॉक्टर को बुलवाया।

डॉक्टर ने उसका पैर देखकर कहा—'लगता है हड्डी टूट गई है। मैं इन्हें अपने क्लिनिक में ले जाता हूं।' डॉक्टर बूढ़ी औरत को अपनी गाड़ी में बैठाकर ले गया।

उनके जाने के बाद धृति से उसके पिताजी और मां ने पूछा—'वह कौन थी?'

'मैं नहीं जानती मां! हां, एक दिन वह मुझे सड़क पर मिली थीं। मेरी टक्कर से उनका आटा फैल गया था, लेकिन उन्होंने मुझे कुछ नहीं कहा। यही समझाया कि हमें सड़क पर ध्यान से चलना चाहिए।'

'यह तो उन्होंने अच्छी बात बताई तुम्हें।' मां ने कहा।

'मां, उनके पैर की हड्डी टूट गई, अब क्या होगा?'

'तुम चिंता मत करो। शाम को डॉक्टर को फोन करके उनके बारे में पूछ लेंगे। खैर, अब तुम पढ़ने जाओ।'

धृति फिर बाल्कनी में आ गई। उसने चार्ट पेपर पर लिखा—'दादीमां चाहिए'—इसके बाद उसने 'मेरी आंटी' निबंध लिखना शुरू किया। निबंध काफी बड़ा लिख गया। उसमें उसने चिड़ियों को दाना देने से लेकर डॉक्टर के पास जाने तक पूरी बात लिख डाली। निबंध पूरा करने के बाद वह अपने साप्ताहिक इम्तिहान की तैयारी करने लग गई।

शाम को मां ने डॉक्टर के घर फोन किया। पता चला डॉक्टर साहब कहीं बाहर चले गए हैं। उन्होंने बूढ़ी के पैर पर प्लास्टर कर घर भिजवा दिया है।

क्लास में जब धृति ने मैडम को अपना निबंध 'मेरी आंटी' दिखाया तो उन्हें वह निबंध बहुत पसंद आया। उन्होंने धृति को क्लास में खूब शाबाशी दी।

धृति की वार्षिक परीक्षा अगले महीने में शुरू होने वाली थी। इसलिए वह अपना अधिक-से-अधिक समय पढ़ाई में लगाने लगी।

धृति की परीक्षा समाप्त हो गई। परीक्षा परिणाम भी निकल गया। वह अच्छे अंकों से उत्तीर्ण भी हो गई। और कई महीने भी बीत गए। पर धृति को वह बूढ़ी औरत कहीं दिखाई नहीं दी। बूढ़ी औरत का पता उसके पास था नहीं, जो उसके बारे में कुछ जानकारी कर पाती।

स्कूल की छुट्टियां हो गई थी। धृति बाल्कनी में बैठी थी। तभी उसे वह बूढ़ी अम्मा दिखी। छड़ी के सहारे वह धीरे-धीरे चल रही थी।

'अरे! यह तो वही हैं!' कहती हुई धृति दौड़कर नीचे आई। बूढ़ी औरत का हाथ पकड़कर बोली—'अम्मा, आप इतने दिन कहां रहीं?'

'मैं तो तुम्हारे घर ही आ रही थी बेटी। तुम लोगों ने मेरी बहुत सहायता की। धन्यवाद भी तो देना था, तुम्हें और तुम्हारे माता-पिता को!'

'आओ, आओ चलो,'—कहकर धृति उसे अपने घर ले आई। 'देखो तो मां, कौन आया है?' धृति ने चहकते हुए आवाज लगाई।

'अरे, आप! आइए, आइए!' धृति की मां ने उसका हाथ पकड़कर आराम से बिठाया—'अब कैसी हैं आप?'

'ठीक हूं। आप लोगों ने मेरी इतनी सहायता की। मुझे अच्छे डॉक्टर को दिखाया, तभी तो मैं ठीक हो सकी। किन शब्दों में आपका धन्यवाद करूं!'

'इसकी क्या जरूरत है!' कहती हुई धृति की मां उसके लिए गर्म-गर्म कॉफी लेने रसोई में चली गई।

'अब मैं भी चिड़ियों को चावल के दाने खिलाती हूं, अम्मा!' धृति ने बताया।

'अच्छा!' बूढ़ी अम्मा ने धृति को प्यार से देखा।

कॉफी का प्याला लेते हुए बूढ़ी अम्मा ने कहा—'मैं धृति को कुछ देना चाहती हूं। बताओ तो बिटिया, आपको क्या चाहिए?'

धृति ने कहा—'नहीं, कुछ नहीं! कुछ भी तो नहीं चाहिए मुझे। मां मेरे लिए सब-कुछ ले आती हैं।'

'फिर भी, तुमने मेरा इतना ध्यान रखा, इसके लिए.... बताओ, तुम्हें क्या चाहिए?'

'अगर आप पूछती ही हैं तो बतादूं कि मुझे एक दादीमां चाहिए। क्या आप मेरी दादीमां बनेंगी?' धृति ने घुटनों के बल उनके पास बैठते हुए कहा।

बूढ़ी अम्मा की आंखें आश्चर्य से फैल गईं। उसका चेहरा खुशी से चमक उठा। बोलीं—'क्यों नहीं, क्यों नहीं? मेरी बच्ची, मेरा तो कोई भी नहीं है! इस पूरी दुनिया में मेरा कोई नहीं है। बिलकुल अकेली हूं मैं।' बूढ़ी अम्मा की आंखों में आंसू भर आए।

'अब ऐसा मत कहिए।' धृति की मां ने उसके हाथ पकड़ते हुए कहा—'अब आप अकेली नहीं हैं। हम सब आपके ही तो हैं। आप तो धृति की दादीमां हैं। अब आप यहीं हमारे साथ ही रहेंगी।'

धृति के पिताजी भी खड़े-खड़े धृति और उसकी दादीमां को देखकर मुस्करा रहे थे।

धृति बहुत खुश थी। उसका मनचाहा उपहार उसे मिल गया था—उसकी दादीमां। ❖

रचनाकारों से

जैन भारती में नैतिक-आध्यात्मिक स्तर के विचार-प्रधान व विश्लेषणात्मक लेखों और मौलिक कहानियों-कविताओं का स्वागत है, प्रकाशित-प्रसारित रचनाओं का उपयोग करना संभव नहीं होगा

अपनी रचनाएं कागज के एक तरफ साफ-साफ टाइप की हुई भेजें
हाथ से लिखी हुई रचनाएं भी कागज के एक ओर ही लिखी हों

लिखावट साफ-सुथरी, बिना काट-छांट के होनी चाहिए
कागज के एक ओर पर्याप्त हाशिया अवश्य छोड़ें

जीवन परिचय, व्यक्तित्व व कृतित्व पर लिखे गए लेख सीधे नहीं भेजें
ऐसे लेख हमारे मांगने पर ही लिखें व भेजें तो बेहतर होगा

सम-सामयिक विषयों पर विचारात्मक टिप्पणियों का भी हम स्वागत करेंगे
ऐसे लेख भी नैतिक-आध्यात्मिक स्तर के हों और विश्लेषणात्मक हों तो बेहतर होगा

महिलाओं, किशोरों और बाल-मन पर
आधारित रचनाओं का हम स्वागत करेंगे

आप चाहें तो कहानी-
कविता भी भेज सकते हैं

अप्रकाशित रचनाएं लौटाना अथवा इस बारे में
पत्र-व्यवहार करना संभव नहीं होगा

बेहतर हो, भेजी गई रचना की एक प्रति
रचनाकार पहले से ही अपने पास रखें

जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा का 91वां अधिवेशन संपन्न

सेवा, श्रद्धा, सहयोग और विश्वास का संकल्प ले आगे बढ़ने का आह्वान

जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा का 91वां वार्षिक अधिवेशन 14 फरवरी को लाडनूं (राजस्थान) में संपन्न हुआ। लाडनूं का जैन विश्वभारती परिसर सेवा, शिक्षा, सहिष्णुता, सहजीवन और श्रद्धा का ऐसा अनूठा केंद्र है जिसमें प्रवेश करने वाले हर व्यक्ति की मनोभावना पल-पल उसी ओर अग्रसर होने लगती है जिसकी ओर ऊपर संकेत किया गया है। ऐसी तपोभूमि पर महासभा का वार्षिक अधिवेशन, स्नेह मिलन और संबोधन अलंकरण जैसा आयोजन संभागियों के लिए न भूलने वाली घटना बन गया। मर्यादा महोत्सव (15 फरवरी, 2005) के अवसर पर महासभा के अधिवेशन का महत्त्व इस दृष्टि से द्विगुणित होना माना गया। महासभा के इस अधिवेशन को आचार्यश्री महाप्रज्ञजी, युवाचार्यश्री महाश्रमणजी, साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी और विराट साधु-साध्वीवृंद का सान्निध्य मिलने से इसका बहुआयामी महत्त्व समझा गया।

जैन विश्वभारती परिसर के अमृतायान भवन स्थित सभागार में 12 फरवरी को श्रेष्ठ सभा चयन समारोह संपन्न हुआ। उदयपुर की जैन श्वेतांबर तेरापंथी सभा श्रेष्ठ सभा के रूप में चयनित हुई, जबकि जैन श्वेतांबर तेरापंथी सभा, कांकरिया, अहमदाबाद विशिष्ट सभा के रूप में चयनित हुई। महासभा की ओर से श्रेष्ठ सभा निर्णायक मंडल गठित किया गया था। सर्वश्री मांगीलाल सेठिया, जसकरण चौपड़ा, सिद्धराज भंडारी, टोडरमल लालानी और श्रीमती शांता पुगलिया इस निर्णायक मंडल के सदस्य थे। इस मौके पर महासभा अध्यक्ष श्री सुरेंद्र चौरड़िया ने सभी आगंतुकों का स्वागत किया और उपाध्यक्ष श्री मूलचंद डागा ने आभार स्वीकार किया।

महासभा की ओर से ही 'संबोधन अलंकरण मिलन संगोष्ठी' का आयोजन भी हुआ। महासभा के महामंत्री श्री तरुण सेठिया ने इस आयोजन की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए महासभा की गतिविधियों और संघीय जुड़ाव के लिए सभी का आह्वान किया। प्रधान ट्रस्टी श्री रणजीतसिंह कोठारी ने सभी आगंतुकों का स्वागत किया और महासभा के अध्यक्ष श्री सुरेंद्र चौरड़िया ने इस आयोजन में उपस्थित महानुभवों के प्रति कृतज्ञता प्रकट की।

इस मौके पर संबोधन प्राप्तकर्ता श्रावक-श्राविकाओं और उनके परिवारजनों का परिचय भी प्रस्तुत किया गया। सम्मान का प्रतीक 'किट' भेंट किया गया। 'संबोधन प्राप्तकर्ता : एक परिचय' पुस्तिका भी सभी को भेंट की गई।

इस अवसर पर समाजभूषण अलंकरण से विभूषित श्री देवेंद्रभाई कर्णावट ने अपने उद्‌गार प्रकट किए। ज्ञानशाला के राष्ट्रीय संयोजक श्री सोहनराज चौपड़ा ने ज्ञानशाला के बारे में आगंतुकों को जानकारी दी।

13 फरवरी, 2005 बसंत पंचमी का मनोहारी दिन था। इसी दिन से तेरापंथ संघ का तीन दिन का मर्यादा महोत्सव शुरू हुआ। इस विराट और भव्य उत्सव के अवसर पर संबोधन अलंकरण समारोह का आयोजन श्रद्धा के त्रयी—आचार्यश्री महाप्रज्ञजी, युवाचार्यश्री और साध्वीप्रमुखाजी की सन्निधि में सभी को आह्लादित कर रहा था। श्रद्धा और सेवा के महत्ताभरे आह्लादकारी माहौल में समाजभूषण अलंकरण, शासनसेवी संबोधन, श्रद्धानिष्ठ श्रावक, सेवानिष्ठ, आदर्श श्रावक, विलक्षण बालक आदि अलंकरणों और श्रेष्ठ सभा पुरस्कार व ज्ञानशाला पुरस्कार प्रदान किए गए। इस बार सर्वोच्च समाजभूषण सम्मान श्री सुरेशदादा जैन, श्री देवेंद्रकुमार कर्णावट सहित स्व. मोतीलाल रांका व मिश्रीलाल सुराणा (मरणोपरांत) को अर्पित किया गया। ये सभी अलंकरण व पुरस्कार महासभा के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री सुरेंद्र चौरड़िया ने अर्पित किए।

महासभा के महामंत्री श्री तरुण सेठिया ने अलंकरण समारोह की पृष्ठभूमि और इसकी महत्ता पर प्रकाश डाला। श्री पन्नालाल पुगलिया ने अलंकरण प्राप्तकर्ताओं का परिचय प्रस्तुत किया। ज्ञानशाला पुरस्कार महासभा अध्यक्ष

श्री सुरेंद्र चौरड़िया और श्री विमल नाहटा (गौहाटी) ने अर्पित किए।

महासभा का 91वां वार्षिक अधिवेशन 14 फरवरी को संपन्न हुआ। इस अधिवेशन में संविधान संशोधन के प्रस्ताव पेश किए गए। संविधान संशोधन उपसमिति के संयोजक श्री सुमेरमल सुराणा ने संशोधन प्रस्ताव प्रस्तुत किए। गहन चर्चा के दौरान आए सुझावों और प्रश्नों का समाधान किया गया और इसके साथ ही प्रस्तावित संशोधन सर्वसम्मति से स्वीकार किए गए।

महासभा के महामंत्री श्री तरुण सेठिया ने पिछले अधिवेशन की कार्यवाही प्रस्तुत की, वार्षिक प्रतिवेदन पेश किया और विचार-विमर्श के बाद सर्वसम्मति से इनको स्वीकार किया गया।

महासभा के कोषाध्यक्ष श्री प्रकाश बैद ने बीते वर्ष के आय-व्यय का लेखा-जोखा पेश किया। इस अवसर पर आगामी वर्ष के लिए अंकेक्षक के रूप में मैसर्स एस. एम. डागा का मनोनयन किया गया और उनकी सेवाओं की सराहना करते हुए धन्यवाद भी ज्ञापित किया गया।

इस अवसर पर महासभा के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री सुरेंद्र चौरड़िया ने वर्ष-भर की उपलब्धियों और प्रगति का ब्यौरा पेश किया। महासभा के कामकाज में उल्लेखनीय सहयोग के लिए सर्वश्री रणजीतसिंह कोठारी, सुमेरमल सुराणा, कैलाशचंद्र गोयल, भंवरलाल सिंघी, सुरेंद्र बोरड़, सोहनराज चौपड़ा और निर्मल नौलखा को सम्मानस्वरूप प्रतीक चिह्न भेंट किए गए।

इसके साथ ही महासभा का यह साधारण वार्षिक अधिवेशन संपन्न हुआ। अधिवेशन के शुभारंभ पर युवा गायक श्री कमल सेठिया ने मंगलाचरण प्रस्तुत किया। अधिवेशन के समापन पर महासभा अध्यक्ष श्री सुरेंद्र चौरड़िया ने पूज्यवरों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की और महासभा के दायित्वों के प्रति सजग व संकल्पित रहने का विश्वास प्रकट किया और उम्मीद की कि सभी के सहयोग से महासभा अपने संकल्पों को पूरा करने में सफल होगी।

जैन श्वे. तेरापंथी महासभा के महामंत्री
श्री तरुण सेठिया से प्राप्त जानकारी के आधार पर
—प्रस्तुतकर्ता : **भ. सो.**

रामकथा : संस्कृतियों का विराट समन्वय

पृष्ठ 46 का शेष

मराठी भावार्थ रामायण (16वीं श. ई.)'[3]—यह तालिका अगणित रामकाव्यों को छोड़कर बनाई गई है, किंतु, फिर भी इससे यह बात सरलता से सिद्ध हो जाती है कि रामकथा ने इस देश की संस्कृति की कितनी गंभीर सेवा की है और कैसे इस कथा को लेकर सारा देश, लगभग, एक ही आदर्श की ओर उन्मुख रहा है। इसके साथ अगर तिब्बत, सिंहल, खोतान, हिंदचीन, श्याम, ब्रह्मदेश और हिंदेशिया में प्रचलित रामकाव्यों की सरणी मिला दें तो, सचमुच ही, यह मानना पड़ेगा कि 'रामकथा न केवल भारतीय, वरन्, एशियाई संस्कृति का भी एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व बन गई' थी।

रामकथा की एक दूसरी विशेषता यह है कि इसके माध्यम से शैव और वैष्णव मतों का विभेद दूर किया गया। आदि-रामायण पर शैवमत का कोई प्रभाव नहीं रहा हो, यह संभव है, किंतु, आगे चलकर रामकथा शिव की भक्ति से एकाकार होती गई। राम का युद्धारंभ के पूर्व रामेश्वरम में शिव की प्रतिष्ठा करना तथा हनुमान का एकादश रुद्र का अवतार माना जाना यह बतलाता है कि वैष्णव एवं शैव मतों की दूरी को यहां के कवि कम करना चाहते थे और यह उचित भी था, क्योंकि शैव मत आर्येतर मत था तथा रामकथा के भी अनेक अंश आर्येतर संस्कृतियों से आए थे। काल-क्रम में, रामकथा का ऐसा विकास और विस्तार हुआ कि शैव और वैष्णव मतों की भिन्नता, बिल्कुल, जाती रही। राम एक ऐसे चरित्र हैं जो ब्राह्मण-धर्म में विष्णु के अवतार, बौद्ध धर्म में बोधिसत्त्व तथा जैन धर्म में आठवें बलदेव के रूप में प्रतिष्ठित हुए तथा आगे चलकर जिनकी भक्ति में शिव-भक्ति भी लय हो गई। ❖

संदर्भ :

1. रामकथा नामक पुस्तक में फादर कामिल बुल्के ने पारस्कर गृ. सू. से एक मंत्र (2-11-4) उद्धृत किया है, जिसका अर्थ इस प्रकार है—'इंद्रपत्नी सीता का मैं आवाहन करता हूं जिसके तत्त्व में वैदिक और लौकिक (दोनों प्रकार के) कार्यों की विभूति निहित है। वह (सीता) सब कार्यों में निरंतर मेरी सहायता किया करे। स्वाहा।'
2. 'इंद्र सीता को ग्रहण करे, पूषा (सूर्य) उसका संचालन करे। वह पानी से भरी (सीता) प्रत्येक वर्ष हमें धान्य प्रदान करती रहे।' (ऋग्वेद मंडल 4, सूक्त 57, मंत्र 6) रामकथा में उद्धृत।
3. रामकथा, कामिल बुल्के। ❖❖

भोगो, पर त्याग से पृष्ठ 34 का शेष

तो यहां भी हमें दूसरों की चिंता है, लालच नहीं है। लेकिन अपने खाने के साथ दूसरे के खाने की उससे अधिक चिंता है। राजा रंतिदेव की कथा इस बात का प्रमाण है। एक दिन राजा को जो-कुछ भोजन के लिए प्राप्त हुआ, उसने उसे अपने परिवार में बराबर बांट दिया। लेकिन तभी एक के बाद एक कई साधु आए और उन्होंने अपना सारा भोजन एक-एक करके सबको अर्पित कर दिया। स्वयं भूखे ही रहे।

कथा आती है कि जब युधिष्ठिर ने युद्ध के बाद यज्ञ किया तो उसकी समाप्ति पर उन्होंने देखा कि एक नेवला वहां पर लोट रहा है, उसका आधा शरीर सोने का है। इस लीला को देखते हुए श्रीकृष्ण ने उससे उसका रहस्य पूछा तो उसने उसका उत्तर दिया :

'भगवन पिछले युग में राजा रंतिदेव थे। उन्होंने अपना सब भोजन भूखे-भिखारियों को दान में दे दिया। मैं जब वहां पहुंचा तो कुछ कण इधर-उधर बिखरे हुए थे। मैं वहीं लेट गया और मैंने कुछ देर बाद आश्चर्य से देखा कि मेरा आधा शरीर सोने का हो गया है। तब से मैं निरंतर घूमता रहता हूं और वहां जाता हूं जहां यज्ञादि होते हैं। वहां भी लोटता हूं, लेकिन मेरा शरीर वैसा-का-वैसा बना हुआ है। अभी मैंने धर्मराज युधिष्ठिर के यज्ञ की बात सुनी तो मैं बड़े विश्वास से यहां आया कि यहां तो मेरा शरीर सोने का हो ही जाएगा। लेकिन बार-बार लोट लगाने पर भी मेरा शरीर वैसा-का-वैसा ही है। राजा रंतिदेव से बड़ा धर्मात्मा मुझे अभी तक नहीं मिला।'

यह कथा सुनकर सभी महानुभावों के मुखारविंद पीले पड़ गए। दूसरों के लिए जो सचमुच जीता है, वही जीना जानता है और इस मंत्र का, जो हमारी आदिसभ्यता का संदेश है, यही अर्थ है।

न केवल आर्यों के धर्मग्रंथों में ऐसा लिखा है, बल्कि दूसरे धर्मग्रंथों में भी मनुष्य को यही आदेश दिया गया है। कुरान जब पड़ोसी के लिए जीने का आदेश देता है तो इसका यही अर्थ है। इस्लाम तो किसी को छोटा-बड़ा मानता ही नहीं। इसी तरह बाइबल में कथा आती है कि एक भक्त जब ईश्वर के पास पहुंचे तो उन्होंने कहा, 'पिछले सप्ताह मैं प्यास से तड़पता हुआ तुम्हारे घर गया था और तुमने मुझे झिड़क कर वापस लौटा दिया।'

भक्त बोला, 'हे प्रभु, आप कब आए? मैंने तो आपको देखा ही नहीं।'

प्रभु ने उत्तर दिया, 'अरे भाई, वह जो वृद्ध पुरुष कांपता हुआ लकड़ी के सहारे पीने के लिए पानी मांगने तेरे दरवाजे पर आया था, वह मैं ही तो था।'

इसी प्रकार उन्होंने दूसरे भक्त से भी कहा। उसने भी यही उत्तर दिया कि मैंने तो आपको देखा ही नहीं।

प्रभु बोले, 'उस दिन वह भूखी-प्यासी बुढ़िया अपने भूखे-प्यासे बच्चे को लेकर, खाने को कुछ मांगने तेरे द्वार पर आई थी, वह मैं ही तो था।'

इसी प्रकार की असंख्य घटनाएं सभी धर्मों के प्राचीन ग्रंथों में मिलती हैं। और आज के वैज्ञानिक युग में समाजवाद और साम्यवाद इसी के तो प्रतीक हैं। लेकिन क्या हम अपनी मान्यताओं को अपने व्यवहार में स्वीकार करते हैं? हमारे लिए शब्द महत्त्वपूर्ण है, अर्थ कुछ अर्थ नहीं रखता। इसलिए आज सारे संसार में युद्ध-घोष ही सुनाई देता है और मनुष्य ने वैज्ञानिक प्रगति के नाम पर विनाश के अणु-अस्त्रों का ही अधिक निर्माण किया है।

'मैं' को 'हम' बनाने का कोई आविष्कार अभी तक नहीं हो सका है और जब तक वह आविष्कार नहीं होता, तब तक हम इसी प्रकार आपदाओं और विपदाओं से घिरे रहेंगे। आश्चर्य तो यह है कि जनतंत्र में भी इस तथ्य की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। नारा है कि 'हम सब-कुछ जनता के लिए कर रहे हैं', पर जो-कुछ किया जाता है वह सब उन्हीं के अपने घरों में चला जाता है।

आज के युग में हम बड़े गर्व से कहते हैं कि हमारा देश सबसे बड़ा प्रजातंत्र है, लेकिन व्यवहार में प्रजा का कोई शासन यहां नहीं है। ऐसी स्थिति में त्याग से भोगने का कोई अर्थ हो सकता है क्या?

निश्चय ही सघन अंधकार के बाद ही उषा का उदय होता है। लेकिन ऐसा कब होगा? होगा अवश्य, लेकिन कब, यह हम नहीं जानते। आजकल तो हमने 'त्याग' और 'परहित' शब्दों को ही कोश से निकाल दिया है, लेकिन फिर भी मनुष्य आशा पर ही जीता है और वह आशा अभी मरी नहीं है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे भवन्तु निरामयः
सर्वे भद्राणिः पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुख भाग् भवेत्।

यह प्रार्थना निश्चय ही हमारे देश में एक बार फिर गूंजेगी। बाहर से ही नहीं, अंतर से भी, और तभी हम त्याग से भोगने के अर्थ को समझ सकेंगे। ❖

With best compliments from :

KALYANI TEA CO. LTD.

**MAKERS OF FINEST QUALITY OF
GREEN / DRTHODOX / CTC
TEAS**

Head Office :
16, Bonfield Lane, KOLKATA 700001
Phone & Fax : (033) 2242-6141

Garden :
**Kenduguri Tea Estate
P.O. Rajgarh, Dist. Dibrugarh, Assam**
Phone : (03754) 276646   Fax : (03754) 276627

जैन भारती, अप्रैल, 2005 ■ भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पं. सं. : आर जे/डब्ल्यू आर /11/48/03-05
'Licensed to Post without Pre-Payment' Under Licence No. RJ/WR/PP/Bikaner13/2004

Authorised Distributor

It has been our endeavor to get you the quality products & services at better price level and the marketing arrangement we have with INA and FAG on All India basis gives the chance to further that, providing better value for your money.

- **FAG Star Distributor**
- **FAG Industrial Distributor**
- **INA Authorised Distributor**

FAG

Premier (India) Bearings Ltd.
Kolkata

We congratulate you for being positioned within FAG as

Star Distributor - 2004

in view of your business contracted for year 2004.

We wish you all success in accomplishing greater strides.

FAG Kugelfisher AG

Star Distributor

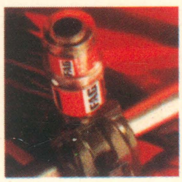

Premier (India) Bearings Ltd.

25 Strand Road, 4th Floor, Kolkata - 700 001. Phone : 22200640/22201926 Fax : 22485745 E-mail : pibl@vsnl.com

Authorisation is valid for supplies on all India basis :

Chandigarh Office :
SCO 41, 2nd Floor, Sector-20-C
Chandigarh - 160 020
Phone : 272 2287
Fax : (0172) 272 2287
E-mail : pibchd@indiatimes.com

Chennai Office :
83 (Old No. 41), Armenian Street
Chennai - 600 001
Phone : 2524 6911/6892/3727
Fax : (044) 2522 8612
E-mail : piblchennai@vsnl.com

Delhi Office :
2423/29, Surekha Building,
G. B. Road, 3rd Floor, Delhi - 6
Phone : 2321 7109,
Fax : (011) 2321 0276
E-mail : pibdel@indiatimes.com

Ludhiana Office :
BXXI 14651, Dholewal Chowk
Ludhiana - 141 003, Punjab
Phone : 2547524/525
Fax : (0161) 2547526
E-mail : rajvinder@pibldh.com

Mumbai Office :
Vashi Plaza, Ground Floor, Sector 17,
Navi Mumbai - 400 705
Phone : 2789 4595/6897
Fax : (022) 2789 6816
E-mail : pibvashi@bom8.vsnl.net.in

तरुण सेठिया, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1 के लिए
जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं सांखला प्रिण्टर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।